कक्षा-10

गोधूलि

भाग-2

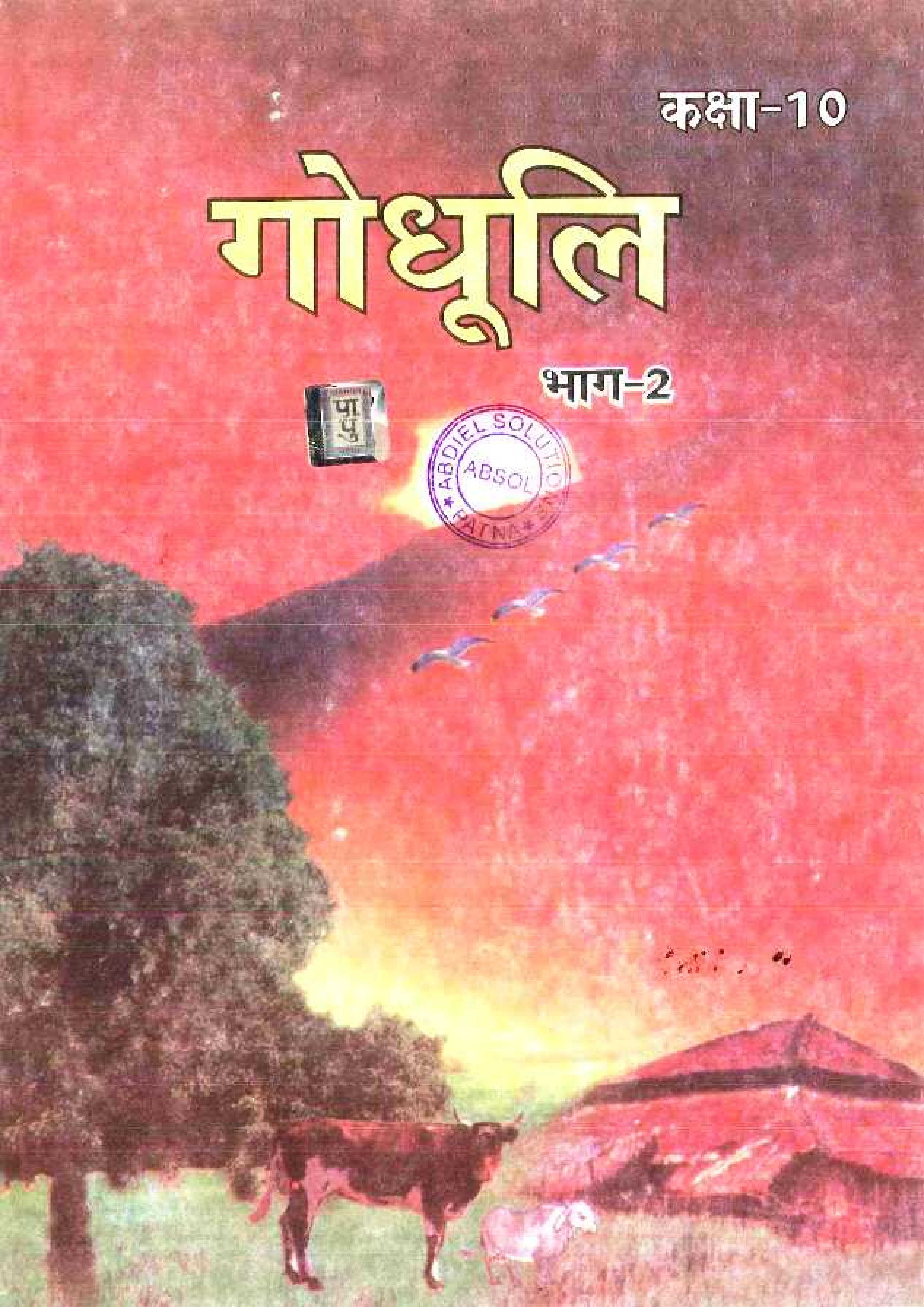

ABDIEL SOLUTIONS
ABSOL
PATNA

INDIAN ARMY

Arms you FOR LIFE AND CAREER AS AN OFFICER

Visit us at www.joinindianarmy.nic.in

or call us (011) 26173215, 26175473, 26172861

Ser NO	Course	Vacancies Per Course	Age	Qualification	Appln to be received by	Training Academy	Duration of Training
1.	NDA	300	16½ - 19 Yrs	10+2 for Army 10+2 (PCM) for AF, Navy	10 Nov & 10 Apr (by UPSC)	NDA Pune	3 Yrs + 1 yr at IMA
2.	10+2 (TES) Tech Entry Scheme	85	16½ - 19½ Yrs	10+2 (PCM) (aggregate 70% and above)	30 Jun & 31 Oct	IMA Dehradun	5 Yrs
3.	IMA(DE)	250	19 - 24 Yrs	Graduation	May & Oct (by UPSC)	IMA Dehradun	1½ Yrs
4.	SSC (NT) (Men)	175	19 - 25 Yrs	Graduation	May & Oct (by UPSC)	OTA Chennai	49 Weeks
5.	SSC (NT) (Women) (including Non- tech Specialists and JAG entry)	As notified	19 - 25 Yrs for Graduates 21-27 Yrs for Post Graduate/ Specialists/ JAG	Graduation/ Post Graduation /Degree with Diploma/ BA LLB	Feb/Mar & Jul/ Aug (by UPSC)	OTA Chennai	49 Weeks
6.	NCC (SPL) (Men)	50	19 - 25 Yrs	Graduate 50% marks & NCC 'C' Certificate (min B Grade)	Oct/ Nov & Apr/ May	OTA Chennai	49 Weeks
	NCC (SPL) (Women)	As notified					
7.	JAG (Men)	As notified	21 - 27 Yrs	Graduate with LLB/ LLM with 55% marks	Apr / May	OTA Chennai	49 Weeks
8.	UES	60	19-25 Yrs (FY)18-24 Yrs (PFY)	BE/B Tech	31 Jul	IMA Dehradun	One Year
9.	TGC (Engineers)	As notified	20-27 Yrs	BE/ B Tech	Apr/ May & Oct/ Nov	IMA Dehradun	One Year
10.	TGC (AEC)	As notified	23-27 Yrs	MA/ M Sc. in 1^{st} or 2^{nd} Div	Apr/ May & Oct/ Nov	IMA Dehradun	One Year
11.	SSC (T) (Men)	50	20-27 Yrs	Engg Degree	Apr/ May & Oct/ Nov	OTA Chennai	49 Weeks
12.	SSC (T) (Women)	As notified	20-27 Yrs	Engg Degree	Feb/ Mar & Jul/ Aug	OTA Chennai	49 Weeks

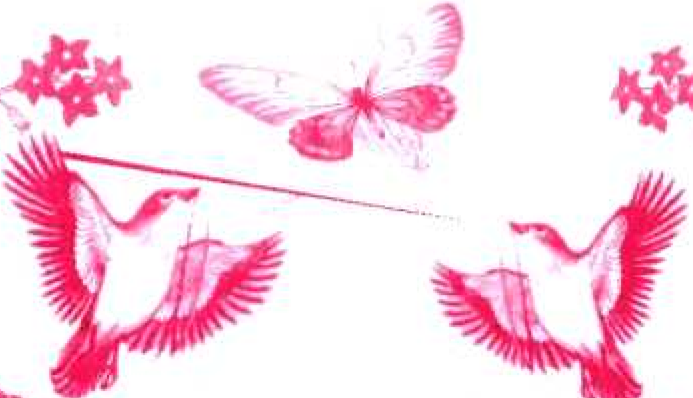

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य-श्यामलां मातरम्।
वन्दे मातरम्॥
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्
सुहासिनीं, सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां, वरदां, मातरम्।
वन्दे मातरम्॥

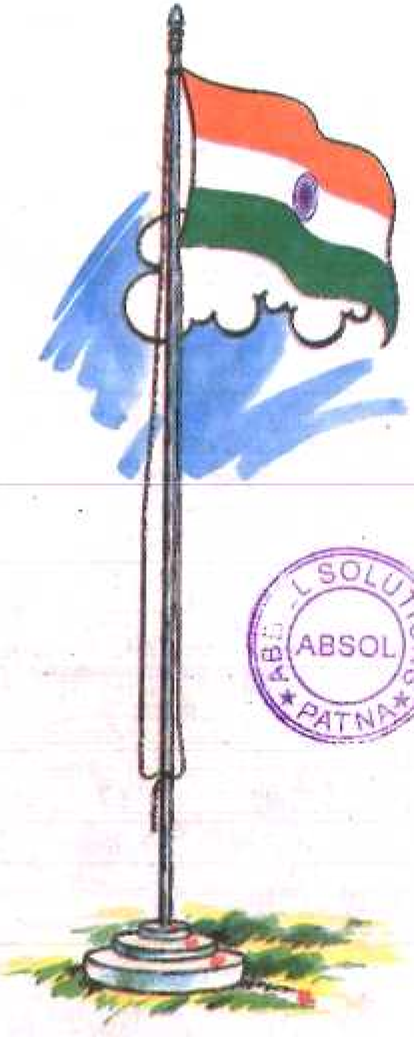

राष्ट्र-गान

जन-गण-मन-अधिनायक जय हे,
भारत - भाग्य - विधाता।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा,
द्राविड़ - उत्कल - बंग।
विंध्य - हिमाचल - यमुना-गंगा,
उच्छल - जलधि - तरंग।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष मागे
गाहे तव जय गाथा।
जन-गण-मंगलदायक जय हे,
भारत - भाग्य - विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।

ABSOL SOLUTIONS ABSOL PATNA

99996

BIHAR STATE TEXTBOOK PUBLISHING CORPORATION LIMITED, BUDH MARG, PATNA-1
बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड, बुद्ध मार्ग, पटना-1

मुद्रक : इमप्रिन्ट, रानीघाट, महेन्द्रू, पटना-800006

गोधूलि

(भाग - 2)

दसवीं कक्षा की हिन्दी पाठ्यपुस्तक

(राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार द्वारा विकसित)

बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड

निदेशक (माध्यमिक शिक्षा), शिक्षा विभाग, बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत ।

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार, पटना के सौजन्य से सम्पूर्ण बिहार राज्य के निमित्त ।

© बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड

प्रथम संस्करण : 2010-11
संशोधित संस्करण : 2012-13
पुनर्मुद्रण : 2013-14
पुनर्मुद्रण : 2014-15
पुनर्मुद्रण : 2015-16

मूल्य : रु0 27.00

बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड, पाठ्य-पुस्तक भवन, बुद्ध मार्ग, पटना-800 001 द्वारा प्रकाशित तथा इमप्रिन्ट, रानीघाट, महेन्द्रू, पटना-6 द्वारा 50,000 प्रतियाँ मुद्रित ।

प्राक्कथन

शिक्षा विभाग, बिहार सरकार के निर्णयानुसार अप्रैल-2009 से प्रथम चरण में राज्य के कक्षा IX हेतु नए पाठ्यक्रम को लागू किया गया। इसी क्रम में शैक्षिक सत्र 2010 के लिए वर्ग I, III, VI एवं X की सभी भाषायी एवं गैर भाषायी पुस्तकों का पाठ्यक्रम लागू किया गया है। इस नए पाठ्यक्रम के आलोक में एन॰सी॰ई॰आर॰टी॰, नई दिल्ली द्वारा विकसित वर्ग X की गणित एवं विज्ञान तथा एस॰सी॰ई॰आर॰टी॰, बिहार, पटना द्वारा विकसित वर्ग I, III, VI तथा X की सभी पुस्तकें एवं शैक्षिक सत्र-2011 में वर्ग II, IV, VII तथा शैक्षिक सत्र-2012 में वर्ग V एवं VIII की सभी पुस्तकें बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम द्वारा आवरण चित्रण कर मुद्रित की गई हैं।

बिहार राज्य में विद्यालयीय शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए माननीय मुख्यमंत्री, बिहार, श्री नीतीश कुमार, शिक्षा मंत्री श्री पी. के. शाही तथा विभाग के प्रधान सचिव, श्री आर. के. महाजन के मार्गदर्शन के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

एन॰सी॰ई॰आर॰टी॰, नई दिल्ली तथा एस॰सी॰ई॰आर॰टी॰, बिहार, पटना के निदेशक के हम आभारी हैं, जिन्होंने अपना सहयोग प्रदान किया।

बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों, शिक्षाविदों की टिप्पणियों एवं सुझावों का सदैव स्वागत करेगा, जिससे बिहार राज्य को देश के शिक्षा जगत में उच्चतम स्थान दिलाने में हमारा प्रयास सहायक सिद्ध हो सके।

वि. एम. पटेल, आई.टी.एस.

प्रबंध निदेशक

बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम लि॰,पटना।

संरक्षण

श्री हसन वारिस, निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार ।
श्री रघुवंश कुमार, निदेशक (शैक्षणिक), बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (उच्च माध्यमिक प्रभाग), पटना ।
डॉ० कासिम खुर्शीद, अध्यक्ष, भाषा विभाग, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार ।

पाठ्यपुस्तक विकास समिति

प्रो० भृगुनंदन त्रिपाठी, हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना ।
डॉ० हेमंत कुमार हिमांशु, सहायक संपादक, ज्ञान विज्ञान, पटना ।
डॉ० मधुमंजरी, व्याख्याता, जे. डी. महिला कॉलेज, पटना ।
डॉ० नीलिमा सिंह व्याख्याता, बी. डी. कॉलेज, पटना ।
डॉ० भारती कुमारी सिंह, शिक्षक नवोदय विद्यालय, किशनगंज ।
श्री हारून रशिद, पूर्व प्राचार्य, आरिन्टल कॉलेज, पटना
श्री अनिल पतंग, हाई स्कूल, शिक्षक, वाथा गुमती, बेगुसराय ।

समन्वयक :

डॉ० सुरेन्द्र कुमार, व्याख्याता, एस० सी० ई० आर० टी०, पटना ।
श्री इम्तियाज आलम, व्याख्याता, एस० सी० ई० आर० टी०, पटना ।

बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (उच्च माध्यमिक) की समीक्षा समिति के सदस्य

डॉ० सुरेन्द्र स्निग्ध, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना ।
डॉ० गीता द्विवेदी, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना ।

अकादमिक सहयोग :

श्री ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी, प्राचार्य, तपिन्दु इंस्टीच्यूट ऑफ हायर स्टडीज, पटना ।

आमुख

यह पुस्तक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 एवं बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2006 के आलोक में निर्मित नवीन पाठ्यक्रम (2007) के आधार पर तैयार की गई है । इस पुस्तक के निर्माण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि ''शिक्षा का मतलब बिहार के स्कूली शिक्षार्थियों को इतना सक्षम बना देना है कि वे अपने जीवन का सही-सही अर्थ समझ सकें, अपनी समस्त योग्यताओं का समुचित विकास कर सकें, अपने जीवन का मकसद तय कर सकें और उसे प्राप्त करने हेतु यथासंभव सार्थक एवं प्रभावी प्रयास कर सकें, और साथ-ही-साथ इस बात को भी समझ सकें कि समाज के दूसरे व्यक्ति को भी ऐसा ही करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है ।'' राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 एवं बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2006 हमें बताती हैं कि शिक्षार्थी के स्कूली जीवन और स्कूल से बाहर के जीवन में अंतराल नहीं होना चाहिए । किताब और किताब से बाहर की दुनिया आपस में गुँथी होनी चाहिए । आशा है कि यह कदम राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफी दूर तक ले जाएगा ।

इस पुस्तक में बच्चों की कल्पनाशक्ति के विकास, उनकी गतिविधियों की सृजनशीलता, उनके सवाल करने और उनका उत्तर पाने के मौलिक अधिकार के समुचित संरक्षण और उसे रचनात्मक दिशा देने की कोशिश की गई है । निश्चय ही इसमें छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों की भी गहरे लगाव के साथ उतनी ही भूमिका होनी चाहिए । छात्रों के प्रति संवेदना और सहानुभूति के साथ उन्हें पुस्तक में गहरी सक्रिय सहभागिता बरतनी होगी और लेखक परिचय, मूल पाठ और उसके साथ संलग्न अभ्यास प्रश्नों के संदर्भ में समुचित जागरूकता दिखानी होगी । हर पाठ के साथ अनेक तरह के अभ्यास हैं जिनसे छात्रों की पाठ पर पकड़ तो बनेगी ही, साथ ही उनके भीतर व्यापक जिज्ञासा को प्रोत्साहन मिलेगा ।

पुस्तक की परिकल्पना में अनेक महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखा गया है । भाषा और साहित्य के ढर्रे में बँधे घेरों को सकारात्मक स्तर पर तोड़ने और वृहत्तर अनुभव क्षेत्रों को उनसे जोड़ने के साथ-साथ वैविध्यपूर्ण पाठ शृंखला को उबाऊ होने से बचाते हुए ऐसा प्रयत्न किया गया है कि पाठ बोझिल न हों तथा सामयिक जीवन संदर्भों से जुड़ कर छात्र के लिए रोचक बन जाएँ। छात्र उत्सुकता और आनंद के साथ तनावमुक्त रीति से उन्हें पढ़ते हुए बहुविध जानकारी प्राप्त करें और उस जानकारी का ज्ञान के सृजन में उपयोग कर सकें ।

एस० सी० ई० आर० टी० सर्वप्रथम इस पुस्तक में शामिल रचनाकारों, उनके प्रकाशकों एवं परिवारजनों के प्रति विशेष आभार प्रकट करती है, भाषा विभागाध्यक्ष डॉ० कासिम खुर्शीद, व्याख्याता, इम्तियाज आलम एवं डॉ० सुरेन्द्र कुमार और साथ ही इस पुस्तक के निर्माण के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करती है । प्रो० भृगुनंदन त्रिपाठी, डॉ० हेमंत कुमार हिमांशु के प्रति हम विशेष आभार प्रकट करते हैं । इन्होंने गहरी सूझबूझ, अथक परिश्रम और भावात्मक लगाव के साथ इस कार्य को तत्परतापूर्वक संपन्न किया । पुस्तक की कंपोजिंग, पेज मेकिंग और टाइप सेटिंग के लिए एरिश कंप्यूटर और अखिलेश कुमार बधाई के पात्र हैं ।

पुस्तक आपके हाथों में है । इसे पढ़ने-पढ़ाने के प्रसंग में हुए अनुभवों से उपजे परामर्शों एवं सुझावों की हमें हमेशा प्रतीक्षा रहेगी ।

निदेशक
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण
परिषद्, बिहार

प्रस्तुत पुस्तक

'गोधूलि, भाग-2' बिहार राज्य के कक्षा – 10 के छात्रों के लिए हिंदी विषय की पाठ्यपुस्तक है । इसे शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस० सी० ई० आर० टी०), बिहार के तत्वावधान में निर्मित नवीन पाठ्यक्रम के आलोक में तैयार किया गया है । अनेक विमर्शों से गुजरकर पुस्तक प्रकाश्य रूप ग्रहण कर सकी । इन विमर्शों में बिहार राज्य की संबद्ध कक्षा की पाठ्यपुस्तक, प्रादेशिक परिवेश, सामयिक-शैक्षणिक वास्तविकताएँ एवं आवश्यकताएँ तथा हिंदी भाषा-साहित्य के अतीत और वर्तमान का प्रासंगिक बोध बनाए रखा गया है । हिंदी भाषा-साहित्य के निर्माण एवं विकास में आदिकाल से ही बिहार की उल्लेखनीय भूमिका रही है । इस भूमिका की पुस्तक की परिकल्पना और स्वरूप ग्रहण में बोध और स्मृति बनाए रखी गई है । निश्चय ही यह बोध एवं स्मृति परिग्रहमूलक न होकर चयनधर्मी है । हमारे चयन में वस्तुपरक निष्पक्षता, स्थायित्व तथा हिंदी भाषा-साहित्य की अंतर्प्रादेशिक राष्ट्रीय प्रकृति के अनुरूप विशदता रहे; इतना ही नहीं, सामाजिक-सांस्कृतिक सद्भाव, जनतांत्रिकता और विवेकनिष्ठा के साथ-साथ अनेक प्रकार की संक्रामक संकीर्णताओं का सक्रिय निषेध भी दिखे, इसका प्रयत्न किया गया है ।

पुस्तक में काव्य एवं गद्य के दोनों खंडों में बारह-बारह रचनाएँ हैं । इनमें हिंदी की स्थानीय जड़ों, राष्ट्रीय व्याप्तियों, अंतर्भाषिक संबंधों और अंतरराष्ट्रीय सरोकारों को एक संहति में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । गद्यखंड में सजगतापूर्वक तीन ऐसी कहानियाँ रखी गई हैं जिनके केंद्र में बच्चा है । तीनों कहानियों में हिंदी प्रदेश की माटी-पानी-हवा और चेतना की अभिव्यक्ति है । उसके साथ ही हिंदी की अपनी भारतीयता की विशिष्ट अभिव्यक्ति भी है । गद्यखंड में श्रम विभाजन और जाति प्रथा पर भारतरत्न बाबा साहेब भीमराव अंबेदकर का सुप्रसिद्ध निबंध तथा शिक्षाशास्त्र पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का निबंध 'शिक्षा और संस्कृति' यहाँ प्रस्तुत हैं । विश्वविख्यात भारतविद् मैक्समूलर का प्रसिद्ध भाषण यहाँ 'भारत से हम क्या सीखें' शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत है । इसके अतिरिक्त नागरी लिपि के ऐतिहासिक विकास के प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता हुआ गुणाकर मुले का निबंध भी दिया गया है । शायद किसी पाठ्यपुस्तक में लिपि पर प्रस्तुत यह पहला पाठ है । कला के दो प्रमुख रूपों नृत्य और संगीत की दो विश्वविख्यात विभूतियों क्रमशः भारतरत्न उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ और पंडित बिरजू महाराज से संबंधित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ भी यहीं दी गई हैं । बिरजू महाराज से सुप्रसिद्ध नृत्यांगना रश्मि वाजपेयी ने बातचीत की है । इस संलाप में बिरजू महाराज का अंतरंग जीवन झलक उठा है । 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' शीर्षक ललित निबंध मानव सभ्यता के विकास के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हुए छात्रों के भीतर सभ्यता और संस्कृति के प्रति व्यापक जिज्ञासाएँ बढ़ाता है । रामविलास शर्मा का निबंध 'परंपरा का मूल्यांकन' सामाजिक विकास के साथ साहित्य की परंपराओं के विकास का भी विवेक जगाता है ।

काव्यखंड में मध्यकालीन तीन प्रमुख कवियों के साथ आधुनिक काल के प्रमुख कवियों के बीच से प्रासंगिक रचनाओं का चयन किया गया है । इन रचनाओं के द्वारा संवेदना, विचार और समझ के धरातल पर साहित्य की आस्वादकता छात्रों में बढ़े तथा उनके सौंदर्यबोध का परिष्कार हो – इस लक्ष्य को ध्यान में रखा गया है । काव्यखंड में एक हिंदीतर भारतीय कवि तथा एक विश्व कवि की कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं । इनके पीछे हमारा यह उद्देश्य है कि छात्र व्यापक भारतीय एवं वैश्विक फलक पर अपनी भाषा के काव्य विकास की समझ विकसित कर सकें ।

काव्यखंड के नामकरण के लिए प्रसिद्ध कवि अरुण कमल के प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं । आशा है, यह पुस्तक नई पीढ़ी के भाषा-साहित्य के पाठकों और बिहार के शिक्षार्थियों को रुचिकर प्रतीत होगी ।

भाषा शिक्षा विभाग
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण
परिषद्, बिहार

अनुक्रमणी

गद्यखंड

1.	भीमराव अंबेदकर	श्रम विभाजन और जाति प्रथा (निबंध)	1
2.	नलिन विलोचन शर्मा	विष के दाँत (कहानी)	6
3.	मैक्सम्यूलर	भारत से हम क्या सीखें (भाषण)	14
4.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	नाखून क्यों बढ़ते हैं (ललित निबंध)	25
5.	गुणाकर मुले	नागरी लिपि (निबंध)	34
6.	अमरकांत	बहादुर (कहानी)	42
7.	रामविलास शर्मा	परंपरा का मूल्यांकन (निबंध)	55
8.	बिरजू महाराज	जित-जित मैं निरखत हूँ (साक्षात्कार)	63
9.	अशोक वाजपेयी	आविन्यों (ललित रचना)	77
10.	विनोद कुमार शुक्ल	मछली (कहानी)	84
11.	यतीन्द्र मिश्र	नौबतखाने में इबादत (व्यक्तिचित्र)	91
12.	महात्मा गाँधी	शिक्षा और संस्कृति (शिक्षाशास्त्र)	102

काव्यखंड

1.	गुरु नानक	राम बिनु बिरथे जगि जनमा, जो नर दुख में दुख नहिं मानै	110
2.	रसखान	प्रेम-अयनि श्री राधिका, करील के कुंजन ऊपर वारौं	114
3.	घनानंद	अति सूधो सनेह को मारग है, मो अँसुवानिहिं लै बरसौ	117
4.	प्रेमघन	स्वदेशी	120
5.	सुमित्रानंदन पंत	भारतमाता	124
6.	रामधारी सिंह दिनकर	जनतंत्र का जन्म	129
7.	स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय	हिरोशिमा	134
8.	कुँवर नारायण	एक वृक्ष की हत्या	138
9.	वीरेन डंगवाल	हमारी नींद	142
10.	अनामिका	अक्षर-ज्ञान	145
11.	जीवनानंद दास	लौटकर आऊँगा फिर	148
12.	रेनर मारिया रिल्के	मेरे बिना तुम प्रभु	152

अनुक्रमणी

गद्यखंड

1.	भीमराव अंबेदकर	श्रम विभाजन और जाति प्रथा (निबंध)	1
2.	नलिन विलोचन शर्मा	विष के दाँत (कहानी)	6
3.	मैक्समूलर	भारत से हम क्या सीखें (भाषण)	14
4.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	नाखून क्यों बढ़ते हैं (ललित निबंध)	25
5.	गुणाकर मुले	नागरी लिपि (निबंध)	34
6.	अमरकांत	बहादुर (कहानी)	42
7.	रामविलास शर्मा	परंपरा का मूल्यांकन (निबंध)	55
8.	बिरजू महाराज	जित-जित मैं निरखत हूँ (साक्षात्कार)	63
9.	अशोक वाजपेयी	आविन्यों (ललित रचना)	77
10.	विनोद कुमार शुक्ल	मछली (कहानी)	84
11.	यतीन्द्र मिश्र	नौबतखाने में इबादत (व्यक्तिचित्र)	91
12.	महात्मा गाँधी	शिक्षा और संस्कृति (शिक्षाशास्त्र)	102

काव्यखंड

1.	गुरु नानक	राम बिनु बिरथे जगि जनमा, जो नर दुख में दुख नहिं मानै	110
2.	रसखान	प्रेम-अयनि श्री राधिका, करील के कुंजन ऊपर वारौं	114
3.	घनानंद	अति सूधो सनेह को मारग है, मो अँसुवानिहिं लै बरसौ	117
4.	प्रेमघन	स्वदेशी	120
5.	सुमित्रानंदन पंत	भारतमाता	124
6.	रामधारी सिंह दिनकर	जनतंत्र का जन्म	129
7.	स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय	हिरोशिमा	134
8.	कुँवर नारायण	एक वृक्ष की हत्या	138
9.	वीरेन डंगवाल	हमारी नींद	142
10.	अनामिका	अक्षर-ज्ञान	145
11.	जीवनानंद दास	लौटकर आऊँगा फिर	148
12.	रेनर मारिया रिल्के	मेरे बिना तुम प्रभु	152

गद्यखंड

घर-सड़क-चौराहा

हिंदी साधारण जनता की भाषा है । जनता के लिए उसका जन्म हुआ था और जबतक वह अपने को जनता के काम की चीज बनाए रहेगी, जनचित्त में आत्मबल का संचार करती रहेगी, तबतक उसे किसी से डर नहीं है । वह विरोधों और संघर्षों के बीच ही पली है । वह किसी राजशक्ति की उँगली पकड़कर यात्रा तय करनेवाली भाषा नहीं है, अपने आप की भीतरी शक्ति से महत्त्वपूर्ण आसन अधिकार करनेवाली अद्वितीय भाषा है ।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी

भीमराव अंबेदकर

बाबा साहेब भीमराव अंबेदकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 ई० में महू, मध्यप्रदेश में एक दलित परिवार में हुआ था । मानव मुक्ति के पुरोधा बाबा साहेब अपने समय के सबसे सुपठित जनों में से एक थे । प्राथमिक शिक्षा के बाद बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन पर उच्चतर शिक्षा के लिए न्यूयार्क (अमेरिका), फिर वहाँ से लंदन (इंग्लैंड) गए । उन्होंने संस्कृत का धार्मिक, पौराणिक और पूरा वैदिक वाङ्मय अनुवाद के जरिये पढ़ा और ऐतिहासिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं । सब मिलाकर वे इतिहास मीमांसक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा धर्म-दर्शन के व्याख्याता बनकर उभरे । स्वदेश में कुछ समय उन्होंने वकालत भी की । समाज और राजनीति में बेहद सक्रिय भूमिका निभाते हुए उन्होंने अछूतों, स्त्रियों और मजदूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया । उनके चिंतन व रचनात्मकता के मुख्यत: तीन प्रेरक व्यक्ति रहे - बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले । भारत के संविधान निर्माण में उनकी महती भूमिका और एकनिष्ठ समर्पण के कारण ही हम आज उन्हें भारतीय संविधान का निर्माता कह कर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । दिसंबर, 1956 ई० में दिल्ली में बाबा साहेब का निधन हो गया ।

बाबा साहेब ने अनेक पुस्तकें लिखीं । उनकी प्रमुख रचनाएँ एवं भाषण हैं - 'द कास्ट्स इन इंडिया : देयर मैकेनिज्म', जेनेसिस एंड डेवलपमेंट', 'द अनटचेबल्स, हू आर दे', 'हू आर शूद्राज', बुद्धिज्म एंड कम्युनिज्म', बुद्धा एण्ड हिज धम्मा', 'थाट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्टेट्स', 'द राइज एंड फॉल ऑफ द हिन्दू वीमेन', 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' आदि । हिंदी में उनका संपूर्ण वाङ्मय भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय से 'बाबा साहब अंबेदकर संपूर्ण वाङ्मय' नाम से 21 खंडों में प्रकाशित हो चुका है ।

यहाँ प्रस्तुत पाठ बाबा साहेब के विख्यात भाषण 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' के ललई सिंह यादव द्वारा किए गए हिंदी रूपांतर 'जाति-भेद का उच्छेद' से किंचित संपादन के साथ लिया गया है । यह भाषण 'जाति-पाँति तोड़क मंडल' (लाहौर) के वार्षिक सम्मेलन (सन् 1936) के अध्यक्षीय भाषण के रूप में तैयार किया गया था, परंतु इसकी क्रांतिकारी दृष्टि से आयोजकों की पूर्णत: सहमति न बन सकने के कारण सम्मेलन स्थगित हो गया और यह पढ़ा न जा सका । बाद में बाबा साहेब ने इसे स्वतंत्र पुस्तिका का रूप दिया । प्रस्तुत आलेख में वे भारतीय समाज में श्रम विभाजन के नाम पर मध्ययुगीन अवशिष्ट संस्कारों के रूप में बरकरार जाति प्रथा पर मानवीयता, नैसर्गिक न्याय एवं सामाजिक सद्भाव की दृष्टि से विचार करते हैं । जाति प्रथा के विषमतापूर्वक सामाजिक आधारों, रूढ़ पूर्वग्रहों और लोकतंत्र के लिए उसकी अस्वास्थ्यकर प्रकृति पर भी यहाँ एक संभ्रांत विधिवेत्ता का दृष्टिकोण उभर सका है । भारतीय लोकतंत्र के भावी नागरिकों के लिए यह आलेख अत्यंत शिक्षाप्रद है ।

श्रम विभाजन और जाति प्रथा

यह विडंबना की ही बात है कि इस युग में भी 'जातिवाद' के पोषकों की कमी नहीं है। इसके पोषक कई आधारों पर इसका समर्थन करते हैं। समर्थन का एक आधार यह कहा जाता है कि आधुनिक सभ्य समाज 'कार्य-कुशलता' के लिए श्रम विभाजन को आवश्यक मानता है और चूँकि जाति प्रथा भी श्रम विभाजन का ही दूसरा रूप है इसलिए इसमें कोई बुराई नहीं है। इस तर्क के संबंध में पहली बात तो यही आपत्तिजनक है कि जाति प्रथा श्रम विभाजन के साथ-साथ श्रमिक विभाजन का भी रूप लिए हुए है। श्रम विभाजन, निश्चय ही सभ्य समाज की आवश्यकता है, परंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम विभाजन की व्यवस्था श्रमिकों के विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति प्रथा की एक और विशेषता यह है कि यह श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन ही नहीं करती बल्कि विभाजित वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है, जो कि विश्व के किसी भी समाज में नहीं पाया जाता।

जाति प्रथा को यदि श्रम विभाजन मान लिया जाए तो यह स्वाभाविक विभाजन नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य की रुचि पर आधारित नहीं है। कुशल व्यक्ति या सक्षम श्रमिक समाज का निर्माण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम व्यक्तियों की क्षमता इस सीमा तक विकसित करें, जिससे वह अपने पेशा या कार्य का चुनाव स्वयं कर सके। इस सिद्धांत के विपरीत जाति प्रथा का दूषित सिद्धांत यह है कि इससे मनुष्य के प्रशिक्षण अथवा उसकी निजी क्षमता का विचार किए बिना, दूसरे ही दृष्टिकोण, जैसे माता-पिता के सामाजिक स्तर के अनुसार, पहले से ही अर्थात गर्भधारण के समय से ही मनुष्य का पेशा निर्धारित कर दिया जाता है।

जाति प्रथा पेशे का दोषपूर्ण पूर्वनिर्धारण ही नहीं करती बल्कि मनुष्य को जीवनभर के लिए एक पेशे में बाँध भी देती है। भले ही पेशा अनुपयुक्त या अपर्याप्त होने के कारण वह भूखों मर जाए। आधुनिक युग में यह स्थिति प्रायः आती है, क्योंकि उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में निरंतर विकास और कभी-कभी अकस्मात परिवर्तन हो जाता है, जिसके कारण मनुष्य को अपना पेशा बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है और यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य को अपना पेशा बदलने की स्वतंत्रता न हो तो इसके लिए भूखों मरने के अलावा क्या चारा रह जाता है ? हिंदू धर्म की जाति प्रथा किसी भी व्यक्ति को ऐसा पेशा चुनने की अनुमति नहीं देती है, जो उसका पैतृक पेशा न हो, भले ही वह उसमें पारंगत हो। इस प्रकार पेशा परिवर्तन की अनुमति

न देकर जाति प्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख व प्रत्यक्ष कारण बनी हुई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम विभाजन की दृष्टि से भी जाति प्रथा गंभीर दोषों से युक्त है । जाति प्रथा का श्रम विभाजन मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता । मनुष्य की व्यक्तिगत भावना तथा व्यक्तिगत रुचि का इसमें कोई स्थान अथवा महत्त्व नहीं रहता । इस आधार पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज के उद्योगों में गरीबी और उत्पीड़न इतनी बड़ी समस्या नहीं जितनी यह कि बहुत से लोग 'निर्धारित' कार्य को 'अरुचि' के साथ केवल विवशतावश करते हैं। ऐसी स्थिति स्वभावतः मनुष्य को दुर्भावना से ग्रस्त रहकर टालू काम करने और कम काम करने के लिए प्रेरित करती है । ऐसी स्थिति में जहाँ काम करने वालों का न दिल लगता हो न दिमाग, कोई कुशलता कैसे प्राप्त की जा सकती है । अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि आर्थिक पहलू से भी जाति प्रथा हानिकारक प्रथा है । क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणारुचि व आत्म-शक्ति को दबा कर उन्हें अस्वाभाविक नियमों में जकड़ कर निष्क्रिय बना देती है ।

अब मैं समस्या के रचनात्मक पहलू को लेता हूँ । मेरे द्वारा जाति प्रथा की आलोचना सुनकर आप लोग मुझसे यह प्रश्न पूछना चाहेंगे कि यदि मैं जातियों के विरुद्ध हूँ, तो फिर मेरी दृष्टि में आदर्श समाज क्या है ? मेरा उत्तर होगा कि मेरा आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व पर आधारित होगा । क्या यह ठीक नहीं है, भ्रातृत्व अर्थात भाईचारे में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ? किसी भी आदर्श समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए जिससे कोई भी वांछित परिवर्तन समाज के एक छोर से दूसरे छोर तक संचारित हो सके । ऐसे समाज के बहुविध हितों में सबका भाग होना चाहिए तथा सबको उनकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए । सामाजिक जीवन में अबाध संपर्क के अनेक साधन व अवसर उपलब्ध रहने चाहिए । तात्पर्य यह कि दूध-पानी के मिश्रण की तरह भाईचारे का यही वास्तविक रूप है, और इसी का दूसरा नाम लोकतंत्र है । क्योंकि लोकतंत्र केवल शासन की एक पद्धति ही नहीं है, लोकतंत्र मूलतः सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है । इसमें यह आवश्यक है कि अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व सम्मान का भाव हो ।

◆ ◆ ◆

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. लेखक किस विडंबना की बात करते हैं ? विडंबना का स्वरूप क्या है ?
2. जातिवाद के पोषक उसके पक्ष में क्या तर्क देते हैं ?
3. जातिवाद के पक्ष में दिए गए तर्कों पर लेखक की प्रमुख आपत्तियाँ क्या हैं ?
4. जाति भारतीय समाज में श्रम विभाजन का स्वाभाविक रूप क्यों नहीं कही जा सकती ?
5. जातिप्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख और प्रत्यक्ष कारण कैसे बनी हुई है ?
6. लेखक आज के उद्योगों में गरीबी और उत्पीड़न से भी बड़ी समस्या किसे मानते हैं और क्यों ?
7. लेखक ने पाठ में किन प्रमुख पहलुओं से जाति प्रथा को एक हानिकारक प्रथा के रूप में दिखाया है ?
8. सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के लिए लेखक ने किन विशेषताओं को आवश्यक माना है ?

पाठ के आस-पास

1. संविधान सभा के सदस्य कौन-कौन थे ? अपने शिक्षक से मालूम करें ।
2. जाति प्रथा पर लेखक के विचारों की तुलना महात्मा गाँधी, ज्योतिबा फुले और डॉ० राममनोहर लोहिया से करते हुए एक संक्षिप्त आलेख तैयार करें और उसका कक्षा में पाठ करें ।
3. 'जातिवाद और आज की राजनीति' विषय पर अंबेदकर जयंती के अवसर पर छात्रों की एक विचार गोष्ठी आयोजित करें ।
4. बाबा साहब भीमराव अंबेदकर को आधुनिक मनु क्यों कहा जाता है ? विचार करें ।

भाषा की बात

1. पाठ से संयुक्त, सरल एवं मिश्र वाक्य चुनें ।
2. **निम्नलिखित के विलोम शब्द लिखें –**

   सभ्य, विभाजन, निश्चय, ऊँच, स्वतंत्रता, दोष, सजग, रक्षा, पूर्वनिर्धारण
3. पाठ से विशेषण चुनें तथा उनका स्वतंत्र वाक्य प्रयोग करें ।
4. **निम्नलिखित के पर्यायवाची शब्द लिखें –**

   दूषित, श्रमिक, पेशा, अकस्मात, अनुमति, अवसर, परिवर्तन, सम्मान

शब्द निधि

विडंबना : उपहास

पोषक : समर्थक, पालक, पालनेवाला

पूर्वनिर्धारण	:	पहले ही तय कर देना
अकस्मात	:	अचानक
प्रक्रिया	:	किसी काम के होने का ढंग या रीति
प्रतिकूल	:	विपरीत, उल्टा
स्वेच्छा	:	अपनी इच्छा
उत्पीड़न	:	बहुत गहरी पीड़ा पहुँचाना, यंत्रणा देना
संचारित	:	प्रवाहित
बहुविध	:	अनेक प्रकार से
प्रत्यक्ष	:	सामने, समक्ष
भ्रातृत्व	:	भाईचारा, बंधुत्व
वांछित	:	आकांक्षित, चाहा हुआ

❑ ❑ ❑

नलिन विलोचन शर्मा

नलिन विलोचन शर्मा का जन्म 18 फरवरी 1916 ई० में पटना के बदरघाट में हुआ । वे जन्मना भोजपुरी भाषी थे । वे दर्शन और संस्कृत के प्रख्यात विद्वान महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र थे । माता का नाम रत्नावती शर्मा था । उनके व्यक्तित्व-निर्माण में पिता के पांडित्य के साथ उनकी प्रगतिशील दृष्टि की भी बड़ी भूमिका थी । उनकी स्कूल की पढ़ाई पटना कॉलेजिएट स्कूल से हुई और पटना विश्वविद्यालय से उन्होंने संस्कृत और हिंदी में एम० ए० किया । वे हरप्रसाद दास जैन कॉलेज, आरा, राँची विश्वविद्यालय और अंत में पटना विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे । सन् 1959 में वे पटना विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष हुए और मृत्युपर्यंत (12 सितंबर 1961 ई०) इस पद पर बने रहे ।

हिंदी कविता में प्रपद्यवाद के प्रवर्तक और नई शैली के आलोचक नलिन जी की रचनाएँ इस प्रकार हैं – 'दृष्टिकोण', 'साहित्य का इतिहास दर्शन', 'मानदंड', 'हिंदी उपन्यास – विशेषतः प्रेमचंद', 'साहित्य तत्त्व और आलोचना' – आलोचनात्मक ग्रंथ; 'विष के दाँत' और सत्रह असंगृहीत पूर्व छोटी कहानियाँ – कहानी संग्रह; केसरी कुमार तथा नरेश के साथ काव्य संग्रह - 'नकेन के प्रपद्य' और 'नकेन- दो', 'सदल मिश्र ग्रंथावली', 'अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ', 'संत परंपरा और साहित्य' आदि संपादित ग्रंथ हैं ।

आलोचकों के अनुसार, प्रयोगवाद का वास्तविक प्रारंभ नलिन विलोचन शर्मा की कविताओं से हुआ और उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के तत्त्व समग्रता से उभरकर आए । आलोचना में वे आधुनिक शैली के समर्थक थे । वे कथ्य, शिल्प, भाषा आदि सभी स्तरों पर नवीनता के आग्रही लेखक थे । उनमें प्रायः परंपरागत दृष्टि एवं शैली का निषेध तथा आधुनिक दृष्टि का समर्थन है । आलोचना की उनकी भाषा गठी हुई और संकेतात्मक है । उन्होंने अनेक पुराने शब्दों को नया जीवन दिया, जो आधुनिक साहित्य में पुनः प्रतिष्ठित हुए ।

यह कहानी 'विष के दाँत तथा अन्य कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह से ली गई है । यह कहानी मध्यवर्ग के अनेक अंतर्विरोधों को उजागर करती है । कहानी का जैसा ठोस सामाजिक संदर्भ है, वैसा ही स्पष्ट मनोवैज्ञानिक आशय भी । आर्थिक कारणों से मध्यवर्ग के भीतर ही एक ओर सेन साहब जैसों की एक श्रेणी उभरती है जो अपनी महत्वाकांक्षा और सफेदपोशी के भीतर लिंग-भेद जैसे कुसंस्कार छिपाये हुए हैं तो दूसरी ओर गिरधर जैसे नौकरीपेशा निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की श्रेणी है जो अनेक तरह की थोपी गयी बंदिशों के बीच भी अपने अस्तित्व को बहादुरी एवं साहस के साथ बचाये रखने के लिए संघर्षरत है । यह कहानी सामाजिक भेद-भाव, लिंग-भेद, आक्रामक स्वार्थ की छाया में पलते हुए प्यार-दुलार के कुपरिणामों को उभारती हुई सामाजिक समानता एवं मानवाधिकार की महत्त्वपूर्ण बानगी पेश करती है ।

विष के दाँत

सेन साहब की नई मोटरकार बँगले के सामने बरसाती में खड़ी है – काली चमकती हुई, स्ट्रीमल इंड; जैसे कोयल घोंसले में कि कब उड़ जाए । सेन साहब को इस कार पर नाज है – बिलकुल नई मॉडल, साढ़े सात हजार में आई है । काला रंग, चमक ऐसी कि अपना मुँह देख लो । कहीं पर एक धब्बा दिख जाए तो क्लीनर और शोफर की शामत ही समझो । मेम साहब की सख्त ताकीद है कि खोखा-खोखी गाड़ी के पास फटकने न पाएँ ।

लड़कियाँ तो पाँचों बड़ी सुशील हैं, पाँच-पाँच ठहरीं और सो भी लड़कियाँ, तहजीब और तमीज की तो जीती-जागती मूरत ही हैं । मिस्टर और मिसेज सेन ने उन्हें क्या करना चाहिए, यह सिखाया हो या नहीं, क्या-क्या नहीं करना चाहिए, इसकी उन्हें ऐसी तालीम दी है कि बस । लड़कियाँ क्या हैं, कठपुतलियाँ हैं और उनके माता-पिता को इस बात का गर्व है । वे कभी किसी चीज को तोड़ती-फोड़तीं नहीं । वे दौड़ती हैं, और खेलती भी हैं, लेकिन सिर्फ शाम के वक्त, और चूँकि उन्हें सिखाया गया है कि ये बातें उनकी सेहत के लिए जरूरी हैं । वे ऐसी मुस्कराहट अपने होठों पर ला सकती हैं कि सोसाइटी की तारिकाएँ भी उनसे कुछ सीखना चाहें, तो सीख लें, पर उन्हें खिलखिलाकर किलकारी मारते हुए किसी ने सुना नहीं । सेन परिवार के मुलाकाती रश्क के साथ अपने शरारती बच्चों से खीझकर कहते हैं – ''एक तुम लोग हो, और मिसेज सेन की लड़कियाँ हैं । अबे, फूल का गमला तोड़ने के लिए बना है ? तुम लोगों के मारे घर में कुछ भी तो नहीं रह सकता ।''

सो जहाँ तक सेन परिवार की लड़कियों का सवाल है, उनसे मोटर की चमक-दमक को कोई खास खतरा नहीं था । लेकिन खोखा भी तो है । खोखा जो एक ही है, सबसे छोटा है । खोखा नाउम्मीद बुढ़ापे की आँखों का तारा है – यह नहीं कि मिसेज सेन अपना और बुढ़ापे का कोई ताल्लुक किसी हालत में मानने को तैयार हों और सेन साहब तो सचमुच बूढ़े नहीं लगते । लेकिन मानने लगने की बात छोड़िए । हकीकत तो यह है कि खोखा का आविर्भाव तब जाकर हुआ था, जब उसकी कोई उम्मीद दोनों को बाकी नहीं रह गई थी । खोखा जीवन के नियम का अपवाद था और यह अस्वाभाविक नहीं था कि वह घर के नियमों का भी अपवाद हो । इस तरह मोटर को कोई खतरा हो सकता था तो खोखा से ही ।

बात ऐसी थी कि सीमा, रजनी, आलो, शेफाली, आरती – पाँचों हुई तो !.... उनके लिए घर में अलग नियम थे, दूसरी तरह की शिक्षा थी, और खोखा के लिए अलग, दूसरी । कहने के

लिए तो सेनों का कहना था कि खोखा आखिर अपने बाप का बेटा ठहरा, उसे तो इंजीनियर होना है, अभी से उसमें इसके लक्षण दिखाई पड़ते थे, इसलिए ट्रेनिंग भी उसे वैसी ही दी जा रही थी। बात यह है कि खोखा के दुर्ललित स्वभाव के अनुसार ही सेनों ने सिद्धान्तों को भी बदल लिया था। अक्सर ऐसा होता है कि सेन परिवार के दोस्त आते हैं, भड़कीले ड्राइंग रूम में बैठते हैं और बातचीत के लिए विषय का अभाव होने पर चर्चा निकल पड़ती है कि किसका लड़का क्या करेगा। तब सेन साहब बड़ी मौलिकता और दूरदेशी के साथ फरमाते हैं कि वह तो अपने लड़के को अपने ढंग से ट्रेंड करेंगे, करेंगे क्या, कर रहे हैं। आजकल की पढ़ाई-लिखाई तो फिजूल है, वह तो उसे अच्छी तरह बिजनेसमैन, इंजीनियर बनाना चाहते हैं। ''अब देखिए न'', सेन साहब कहते हैं, ''खोखा पाँच साल का हो रहा है। लोग कहते हैं, उसे किंडरगार्टन स्कूल में भेज दो, लेकिन मैंने अभी यही इन्तजाम किया है कि कारखाने का बढ़ई मिस्त्री दो-एक घंटे के लिए आकर उसके साथ कुछ ठोक-पीट किया करे। इससे बच्चे की उँगलियाँ अभी से औजारों से वाकिफ हो जाएँगी, हिन्दुस्तानी लोग यही नहीं समझते।''

एक दिन का वाकया है कि ड्राइंग रूम में सेन साहब के कुछ दोस्त बैठे गपशप कर रहे थे। उनमें एक साहब साधारण हैसियत के अखबारनवीस थे और सेनों के दूर के रिश्तेदार भी होते थे। साथ में उनका लड़का भी था, जो था तो खोखा से भी छोटा, पर बड़ा समझदार और होनहार मालूम पड़ता था। किसी ने उसकी कोई हरकत देखकर उसकी कुछ तारीफ कर दी और उन साहब से पूछा कि बच्चा स्कूल तो जाता ही होगा ? इसके पहले कि पत्रकार महोदय कुछ जवाब देते, सेन साहब ने शुरू किया – मैं तो खोखा को इंजीनियर बनाने जा रहा हूँ, और ये ही बातें दुहराकर वे थकते नहीं थे। पत्रकार महोदय चुप मुस्कुराते रहे। जब उनसे फिर पूछा गया कि अपने बच्चे के विषय में उनका क्या ख्याल है, तब उन्होंने कहा, ''मैं चाहता हूँ कि वह जेंटलमैन जरूर बने और जो कुछ बने, उसका काम है, उसे पूरी आजादी रहेगी।'' सेन साहब इस उत्तर के शिष्ट और प्रच्छन्न व्यंग्य पर ऐंठकर रह गए।

तभी बाहर शोर-गुल सुनकर सेन साहब उठने लगे, तो उनके मित्रों ने भी जाने की इच्छा प्रकट की और उन्हीं के साथ बाहर आए। बाहर सेन साहब का शोफर एक औरत से उलझ रहा था। औरत के पास एक पाँच-छह साल का बच्चा खड़ा था, जिसे वह रोकने की कोशिश कर रही थी, क्योंकि बच्चा बार-बार शोफर की ओर झपटता था।

सेन साहब को देखकर औरत सहम गई। शोफर ने साहब की ओर बढ़कर अदब के साथ कहा, ''देखिए साहब, मदन गाड़ी को छू रहा था, गाड़ी गन्दी हो जाती, मैंने मना किया तो लगा कहने – 'जा-जा' तो मैंने उसे पकड़कर अलग कर दिया, इस पर मुझको मारने दौड़ा। अब उसकी माँ भी आकर ख्वामख्वाह मुझसे उलझ रही है।'' मदन की माँ कुछ कहना चाहती थी, लेकिन सेन साहब के सटे होठों को देखकर चुप रह गई। सेन साहब ने बड़े संयत पर कठोर स्वर में कहा– ''मदन की माँ, मदन को ले जाओ और देखना, वह फिर ऐसी हरकत न करे। मदन

की माँ अपने बच्चे के बाएँ घुटने से निकलते हुए खून को पोंछती हुई चली गई। ड्राइवर ने शायद धकेल दिया था और वह गिर पड़ा था ! लेकिन एक मामूली किरानी के बेटे को सेन साहब के ड्राइवर ने धक्का दे दिया और उसे चोट आ गई, तो आखिर ऐसी कौन-सी बात हो गई !

ठीक इसी वक्त मोटर के पीछे खट्-खट् की आवाज सुनकर सेन साहब लपके, शोफर भी दौड़ा। और लोग सीढ़ियों से उतरकर अपनी-अपनी गाड़ियों की ओर चले। सभी ने देखा, सेन साहब खोखा को गोद में लेकर उसी हल्की मुस्कुराहट के साथ डाँट रहे हैं और मोटर की पिछली बत्ती का लाल शीशा चकनाचूर हो गया है। सेन साहब ने मित्रों को सम्बोधित करते हुए कहा, "देखा आपलोगों ने ? बेटा शरारती हो गया, काशू। मोटर के पीछे हरदम पड़ा रहता है। उसके कल-पुर्जों में इसको अभी से इतनी दिलचस्पी है कि क्या बताऊँ !... शायद देखना चाह रहा था कि आखिर इस बत्ती के अन्दर है क्या ?"

सेन साहब खोखा को जमीन पर रखकर अपने दोस्तों के साथ उनकी कार की ओर चले। उन्होंने अपने मित्रों की भाव-भंगिमा देखी नहीं, देखते भी तो कुछ समझ पाते इसमें शक ही था। मिस्टर सिंह अपनी कार के पास पहुँचे और सेन साहब को नमस्कार कर दरवाजा खोलने के लिए बढ़े और फिर रुक गए। उनकी निगाह अचानक ही अगले चक्के पर गई थी। उन्होंने नजदीक जाकर देखा और परेशानी की हालत में खड़े हो गए। टायर बिलकुल बैठ गया था। शायद 'पंक्चर' हो गया था। सेन साहब भी आगे बढ़ आए और कुछ झिझकते हुए बोले, "कहीं ऐसा तो नहीं है कि काशू ने हवा निकाल दी हो ! ड्राइवर, जरा दूसरे चक्कों को भी देख लो और पंप ले आकर हवा भर दो; और हाँ कुर्सियाँ लॉन में लगवा दो, तब तक हम यहीं बैठते हैं।"

ड्राइवर ने एक कार का चक्कर लगाकर सूचना दी कि दूसरी ओर के पिछले चक्के की भी हवा निकाली हुई थी। 'काम तो काशू बाबू का ही मालूम पड़ता है, इधर ही खेल रहे थे' शोफर ने बताया और पंप लाने चला गया।

मुकर्जी साहब की गाड़ी सकुशल थी और वह अपने और पत्रकार महोदय के परिवार के साथ चलते बने। सेन साहब और मिस्टर सिंह लॉन की कुर्सियों पर बैठकर बातें करते रहे। बातों के सिलसिले में ही सेन साहब ने बतलाया कि काशू ने इधर चक्कों से हवा निकालने की हिकमत जान ली थी और मौका मिलते ही शरारत कर गुजरता था। उनका अपना ख्याल था, उसकी इन हरकतों को देखकर तो यह साफ मालूम होता था कि इंजीनियरिंग में उसकी दिलचस्पी है। इसी तरह की दूसरी बेमतलब की बातें होती रहीं, जब तक कि चक्कों में पंप नहीं हो गया और मिस्टर सिंह रुखसत नहीं हो गए।

सेन साहब अन्दर लौटे तो बेयरा को, मदन के पिता गिरधरलाल को, जो उनकी फैक्टरी में किरानी था और अहाते के एक कोने में...आउटहाउस में रहता था, बुला लाने का हुक्म दिया। गिरधरलाल आया और सेन साहब के सामने सिर झुकाकर खड़ा हो गया, जैसे खून के जुर्म में कैदी जज के सामने खड़ा हो। सेन साहब ने ठंडी बेलौस आवाज में कहना शुरू किया, "देखो गिरधर,

मदन आजकल बहुत शोख हो गया है । मैं तुम्हारी और उसकी भलाई चाहता हूँ । गाड़ी को गन्दा किया वह अलग, मना करने पर ड्राइवर को मारने दौड़ा और मेरे सामने भी डरने के बदले उसकी ओर झपटता रहा । ऐसे ही लड़के आगे चलकर गुण्डे, चोर और डाकू बनते हैं !'' गिरधरलाल कभी-कभी 'जी' कह देता था । सेन साहब का भाषण जारी था, ''उसकी हालत क्या होती है तुम जानते ही हो । उसे सँभालने की कोशिश करो । फिर ऐसी बात हुई, तो अच्छा नहीं होगा ! तुम जा सकते हो ।''

उस रात गिरधरलाल के क्वार्टर से आते हुए मदन के चीत्कार से सेनों का आरामदेह शयनागार गूँज गया । आराम में खलल पड़ने से कुछ झुँझलाकर पिता सेन ने धर्मपत्नी से बड़ी समझदारी की बात कही, ''गिरधर खुद समझदार आदमी है । उसकी बीवी ने ही लड़के को बिगाड़ दिया है । मदन की यही दवा है । मेरी तो तबीयत हुई थी कि कमबख्त की खाल उधेड़ दूँ । गिरधर ने ऐसी ही कड़ाई जारी रखी तो शायद ठीक हो जाए । 'स्पेयर द रॉड ऐण्ड स्पवायल द चाइल्ड' ।''

माता सेन की नींद उचट गई थी । उन्हें मदन की कातर चिल्लाहट से ज्यादा अपने पति की बकबक पर खीझ आ रही थी लेकिन उन्होंने भी अपनी खीझ मदन पर ही उतारी, ''कमबख्त कैसा कौए की तरह चिल्ला रहा है ! भिखमंगा कहीं का ! खोखा की बराबरी करता फिरता है ।''

मदन का आर्त रुदन रुक गया था । खैरियत थी, उसकी सिसकियाँ सेनों के शयनागार तक नहीं पहुँच सकती थीं ।

लेकिन दूसरे दिन तो बिलकुल बेढब मामला हो गया । शाम के वक्त खेलता-कूदता खोखा बँगले के अहाते की बगलवाली गली में जा निकला । वहाँ धूल में मदन पड़ोसियों के आवारागर्द छोकरों के साथ लट्टू नचा रहा था । खोखा ने देखा तो उसकी तबीयत मचल गई । हंस कौओं की जमात में शामिल होने के लिए ललक गया । लेकिन आदत से लाचार उसने बड़े रोब के साथ मदन से कहा, 'हमको लट्टू दो, हम भी खेलेगा ।' दूसरे लड़कों को कोई खास उज्र नहीं थी, वे खोखा को अपनी जमात में ले लेने के फायदों को नजरअन्दाज नहीं कर सकते थे । पर उनके अपमानित, प्रताड़ित लीडर मदन को यह बात कब मंजूर हो सकती थी ? उसने छूटते ही जवाब दिया-'अबे भाग जा यहाँ से ! बड़ा आया है लट्टू खेलनेवाला ! है भी लट्टू तेरे ! जा, अपने बाबा की मोटर पर बैठ ।'

काशू तैश में आ गया । वह इसी उम्र में नौकरों पर, अपनी बहनों पर हाथ चला देता था और क्या मजाल कि उसे कोई कुछ कह दे । उसने आव देखा न ताव, मदन को एक घूँसा रसीद कर दिया ।

चोर-गुंडा-डाकू होनेवाला मदन भी कब माननेवाला था ! वह झट काशू पर टूट पड़ा । दूसरे लड़के जरा हटकर इस द्वन्द्व युद्ध का मजा लेने लगे । लेकिन यह लड़ाई हड्डी और मांस की, बँगले के पिल्ले और गली के कुत्ते की लड़ाई थी । अहाते में यही लड़ाई हुई रहती, तो काशू

शेर हो जाता । वहाँ से तो एक मिनट बाद ही वह रफूचक्कर हुआ जान लेकर भाग निकला । महल और झोपड़ीवालों की लड़ाई में अक्सर महलवाले ही जीतते हैं, पर उसी हालत में, जब दूसरे झोपड़ीवाले उनकी मदद अपने ही खिलाफ़ करते हैं । लेकिन बच्चों को इतनी अक्ल कहाँ ? उन्होंने न तो अपने दुर्दमनीय लीडर की मदद की, न अपने माता-पिता के मालिक के लाडले की ही । हाँ, लड़ाई खत्म हो जाने पर तुरन्त ही सहमते हुए तितर-बितर हो गए ।

मदन घर नहीं लौटा । लेकिन जाता ही कहाँ ? आठ-नौ बजे तक इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा । फिर भूख लगी, तो गली के दरवाजे से आहिस्ता-आहिस्ता घर में घुसा । उसके लिए मार खाना मामूली बात थी । डर था तो यही कि आज मार और दिनों से भी बुरी होगी । लेकिन उपाय ही क्या था ! वह पहले रसोईघर में घुसा । माँ नहीं थी । बगल के सोनेवाले कमरे से बातचीत की आवाज आ रही थी । उसने इतमीनान के साथ भर-पेट खाना खाया । फिर दरवाजे के पास जाकर अन्दर की बातचीत सुनने की कोशिश करने लगा । उसे बड़ा ताज्जुब हुआ -- उसके बाबू गरज-तरज नहीं रहे थे ! उसकी अम्मा ने कोई बात पूछी, जिसे वह ठीक से सुन नहीं सका, तो उसके बाबू ने झल्लाकर कहा, "अरे भाई बतलाया तो, साहब ने सिर्फ यही कहा – आज से तुम्हारी कोई जरूरत नहीं; कल से मकान छोड़ देना और अपनी तनख्वाह ऑफिस से ले लेना !" ...मदन के काम की कोई बात नहीं हो रही थी, उसकी सजा की तजबीज होती रहती, तो सुनने की कोशिश भी करता वह ।

वह दबे पाँव बरामदे में रखी चारपाई की तरफ सोने के लिए चला, तो अँधेरे में उसका पैर लोटे से लग गया ! लोटे की ठन्-ठन् की आवाज सुनकर गिरधर बाहर निकल आया । मदन की अम्मा भी उसके साथ थी । मदन चौंककर घूमा और मार खाने की तैयारी में आ छाती को अपने हाथों से बाँधकर खड़ा हो गया । मदन अक्सर अपने पिता के हाथों पिटता था, बहुत पिटने पर रोता भी था, मगर बहादुरी के साथ ।

गिरधर निस्सहाय निष्ठुरता के साथ मदन की ओर बढ़ा । मदन ने अपने दाँत भींच लिए । गिरधर मदन के बिलकुल पास आ गया था कि अचानक वह ठिठक गया । उसके चेहरे से नाराजगी का बादल हट गया । उसने लपककर मदन को हाथों से उठा लिया । मदन हक्का-बक्का अपने पिता को देख रहा था । उसे याद नहीं, उसके पिता ने कब उसे इस तरह प्यार किया था, अगर कभी किया था तो गिरधर उसी बेपरवाही, उल्लास और गर्व के साथ बोल उठा, जो किसी के लिए भी नौकरी से निकाले जाने पर ही मुमकिन हो सकता है, 'शाबाश बेटा' ! एक तेरा बाप है; और तूने तो, बे, खोखा के दो-दो दाँत तोड़ डाले । हा हा हा हा !

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए ।
2. सेन साहब के परिवार में बच्चों के पालन-पोषण में किए जा रहे लिंग आधारित भेद-भाव का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए ।
3. खोखा किन मामलों में अपवाद था ?
4. सेन दंपती खोखा में कैसी संभावनाएँ देखते थे और उन संभावनाओं के लिए उन्होंने उसकी कैसी शिक्षा तय की थी ?
5. सप्रसंग व्याख्या कीजिए –
   (क) लड़कियाँ क्या हैं, कठपुतलियाँ हैं और उनके माता-पिता को इस बात का गर्व है ।
   (ख) खोखा के दुर्ललित स्वभाव के अनुसार ही सेनों ने सिद्धांतों को भी बदल लिया था ।
   (ग) ऐसे ही लड़के आगे चलकर गुंडे, चोर और डाकू बनते हैं ।
   (घ) हंस कौओं की जमात में शामिल होने के लिए ललक गया ।
6. सेन साहब के और उनके मित्रों के बीच क्या बातचीत हुई और पत्रकार मित्र ने उन्हें किस तरह उत्तर दिया ?
7. मदन और ड्राइवर के बीच के विवाद के द्वारा कहानीकार क्या बताना चाहता है ?
8. काशू और मदन के बीच झगड़े का कारण क्या था ? इस प्रसंग के द्वारा लेखक क्या दिखाना चाहता है ?
9. 'महल और झोपड़ी वालों की लड़ाई में अक्सर महल वाले ही जीतते हैं, पर उसी हालत में जब दूसरे झोपड़ी वाले उनकी मदद अपने ही खिलाफ करते हैं ।' लेखक के इस कथन को कहानी से एक उदाहरण देकर पुष्ट कीजिए ।
10. रोज-रोज अपने बेटे मदन की पिटाई करने वाला गिरधर मदन द्वारा काशू की पिटाई करने पर उसे दंडित करने की बजाय अपनी छाती से क्यों लगा लेता है ?
11. सेन साहब, मदन, काशू और गिरधर का चरित्र-चित्रण करें ।
12. आपकी दृष्टि में कहानी का नायक कौन है ? तर्कपूर्ण उत्तर दें ।
13. आरंभ से ही कहानीकार का स्वर व्यंग्यपूर्ण है । ऐसे कुछ प्रमाण उपस्थित करें ।
14. 'विष के दाँत' कहानी का सारांश लिखें ।

पाठ के आस-पास

1. एक साहित्यकार के रूप में नलिन विलोचन शर्मा के महत्त्व के बारे में अपने शिक्षक से जानकारी लें ।
2. अपने शिक्षक की मदद से लेखक के पिता की रचनाओं की सूची तैयार करें और उनके बारे में जानकारी इकट्ठी करें ।

भाषा की बात

1. कहानी से मुहावरे चुनकर उनके स्वतंत्र वाक्य प्रयोग करें ।
2. कहानी से विदेशज शब्द चुनें और उनका स्रोत निर्देश करें ।
3. कहानी से पाँच मिश्र वाक्य चुनें ।
4. **वाक्य-भेद स्पष्ट कीजिए –**
   (क) इसके पहले कि पत्रकार महोदय कुछ जवाब देते, सेन साहब ने शुरू किया – मैं तो खोखा को इंजीनियर बनाने जा रहा हूँ ।
   (ख) पत्रकार महोदय चुप मुस्कुराते रहे ।
   (ग) ठीक इसी वक्त मोटर के पीछे खट-खट की आवाज सुनकर सेन साहब लपके, शोफर भी दौड़ा ।
   (घ) ड्राइवर, जरा दूसरे चक्कों को भी देख लो और पंप ले आकर हवा भर दो ।

शब्द निधि

बरसाती	:	पोर्टिको	**वाकिफ**	:	परिचित
नाज	:	गर्व, गुमान	**वाकया**	:	घटना
तहजीब	:	सभ्यता	**हैसियत**	:	स्तर, प्रतिष्ठा, सामर्थ्य, औकात
शोफर	:	ड्राइवर	**अखबारनवीस**	:	पत्रकार
शामत	:	दुर्भाग्य	**प्रच्छन्न**	:	छिपा हुआ, गुप्त, अप्रकट
सख्त	:	कड़ा, कठोर	**अदब**	:	शिष्टता, सभ्यता
ताकीद	:	कोई बात जोर देकर कहना, चेतावनी	**हिकमत**	:	कौशल, योग्यता
			रुखसत	:	विदाई
खोखा-खोखी	:	बच्चा-बच्ची (बाँग्ला)	**बेलौस**	:	निःस्वार्थ
फटकना	:	निकट आना	**बेयरा**	:	खाना खिलाने वाला सेवक
तमीज	:	विवेक, बुद्धि, शिष्टता	**चीत्कार**	:	क्रंदन, आर्त्त होकर चीखना
तालीम	:	शिक्षा	**शयनागार**	:	शयनकक्ष, सोने का कमरा
सोसाइटी	:	शिष्ट समाज, भद्रलोक	**खलल**	:	विघ्न, बाधा, व्यवधान
रश्क	:	ईर्ष्या	**कातर**	:	आर्त्त
ताल्लुक	:	संबंध	**खैरियत**	:	कुशलक्षेम
हकीकत	:	सच्चाई, वास्तविकता	**बेढब**	:	बेतरीका, अनगढ़
आविर्भाव	:	उत्पत्ति, प्रकट होना	**उज्र**	:	आपत्ति
दुर्ललित	:	लाड़-प्यार में बिगड़ा हुआ	**मजाल**	:	ताकत, हिम्मत, साहस
ट्रेंड	:	प्रशिक्षित	**अक्ल**	:	बुद्धि
दूरंदेशी	:	दूरदर्शिता, समझदारी	**दुर्दमनीय**	:	मुश्किल से जिसका दमन किया जा सके
फरमाना	:	आग्रहपूर्वक कहना			
फिजूल	:	फालतू, व्यर्थ	**निष्ठुरता**	:	क्रूर निर्ममता

मैक्समूलर

विश्वविख्यात विद्वान फ्रेड्रिक मैक्समूलर का जन्म आधुनिक जर्मनी के डेसाउ नामक नगर में 6 दिसंबर 1823 ई० में हुआ था । जब मैक्समूलर चार वर्ष के हुए, उनके पिता विल्हेल्म मूलर नहीं रहे । पिता के निधन के बाद उनके परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई, फिर भी मैक्समूलर की शिक्षा-दीक्षा बाधित नहीं हुई । बचपन में ही वे संगीत के अतिरिक्त ग्रीक और लैटिन भाषा में निपुण हो गये थे तथा लैटिन में कविताएँ भी लिखने लगे थे । 18 वर्ष की उम्र में लिपजिंग विश्वविद्यालय में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन आरंभ कर दिया । उन्होंने 'हितोपदेश' का जर्मन भाषा में अनुवाद प्रकाशित करवाया । इसी समय उन्होंने 'कठ' और 'केन' आदि उपनिषदों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया तथा 'मेघदूत' का जर्मन पद्यानुवाद भी किया ।

मैक्समूलर उन थोड़े-से पाश्चात्य विद्वानों में अग्रणी माने जाते हैं जिन्होंने वैदिक तत्त्वज्ञान को मानव सभ्यता का मूल स्रोत माना । स्वामी विवेकानंद ने उन्हें 'वेदांतियों का भी वेदांती' कहा । उनका भारत के प्रति अनुराग जगजाहिर है । उन्होंने भारतवासियों के पूर्वजों की चिंतनराशि को यथार्थ रूप में लोगों के सामने प्रकट किया । उनके प्रकाण्ड पाँडित्य से प्रभावित होकर साम्राज्ञी विक्टोरिया ने 1868 ई० में उन्हें अपने ऑस्बोर्न प्रासाद में ऋग्वेद तथा संस्कृत के साथ यूरोपियन भाषाओं की तुलना आदि विषयों पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया था । उस भाषण को सुनकर विक्टोरिया इतनी प्रभावित हुई कि उन्हें 'नाइट' की उपाधि प्रदान कर दी, किन्तु उन्हें यह पदवी अत्यंत तुच्छ लगी और उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया । भारतभक्त, संस्कृतानुरागी एवं वेदों के प्रति अगाध आस्था रखने वाले फ्रेड्रिक मैक्समूलर का 28 अक्टूबर सन् 1900 ई० में निधन हो गया ।

प्रस्तुत आलेख वस्तुत: भारतीय सिविल सेवा हेतु चयनित युवा अंग्रेज अधिकारियों के आगमन के अवसर पर संबोधित भाषणों की शृंखला की एक कड़ी है । प्रथम भाषण का यह अविकल रूप से संक्षिप्त एवं संपादित अंश है जिसका भाषांतरण **डॉ० भवानीशंकर त्रिवेदी** ने किया है । भाषण में मैक्समूलर ने भारत की प्राचीनता और विलक्षणता का प्रतिपादन करते हुए नवागंतुक अधिकारियों को यह बताया कि विश्व की सभ्यता भारत से बहुत कुछ सीखती और ग्रहण करती आयी है । उनके लिए भी यह एक सौभाग्यपूर्ण अवसर है कि वे इस विलक्षण देश और उसकी सभ्यता-संस्कृति से बहुत कुछ सीख-जान सकते हैं । यह भाषण आज भी उतना ही प्रासंगिक है, बल्कि स्वदेशाभिमान के विलोपन के इस दौर में इस भाषण की विशेष सार्थकता है । नई पीढ़ी अपने देश तथा इसकी प्राचीन सभ्यता-संस्कृति, ज्ञान-साधना, प्राकृतिक वैभव आदि की महत्ता का प्रामाणिक ज्ञान प्रस्तुत भाषण से प्राप्त कर सकेगी ।

भारत से हम क्या सीखें

सर्वविध सम्पदा और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण कौन-सा देश है, यदि आप मुझे इस भूमण्डल का अवलोकन करने के लिए कहें तो बताऊँगा कि वह देश है - भारत । भारत, जहाँ भूतल पर ही स्वर्ग की छटा निखर रही है । यदि आप यह जानना चाहें कि मानव मस्तिष्क की उत्कृष्टतम उपलब्धियों का सर्वप्रथम साक्षात्कार किस देश ने किया है और किसने जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं पर विचार कर उनमें से कइयों के ऐसे समाधान ढूँढ़ निकाले हैं कि प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शनिकों का अध्ययन करनेवाले हम यूरोपियन लोगों के लिए भी वे मनन के योग्य हैं, तो मैं यहाँ भी भारत ही का नाम लूँगा । और यदि यूनानी, रोमन और सेमेटिक जाति के यहूदियों की विचारधारा में ही सदा अवगाहन करते रहनेवाले हम यूरोपियनों को ऐसा कौन-सा साहित्य पढ़ना चाहिए जिससे हमारे जीवन का अंतरतम परिपूर्ण, अधिक सर्वांगीण, अधिक विश्वव्यापी, यूँ कहें कि सम्पूर्णतया मानवीय बन जाये, और यह जीवन ही क्यों, अगला जन्म तथा शाश्वत जीवन भी सुधर जाये, तो मैं एक बार फिर भारत ही का नाम लूँगा ।

जो लोग आजकल के भारत में घूमकर आये हैं, उन लोगों को अधिकतर भारत के कलकत्ता, बम्बई, मद्रास या ऐसे दूसरे शहरों की ही याद है, जबकि मेरा अधिकतर ध्यान सच्चे अर्थों में भारत के नागरिक-ग्रामवासियों की ओर ही रहा है, क्योंकि सच्चे भारत के दर्शन वहीं हो सकते हैं ।

दो-तीन हजार वर्ष पुराना ही क्यों, आज का भारत भी ऐसी अनेक समस्याओं से भरपूर है जिनका समाधान उन्नीसवीं सदी के हम यूरोपियन लोगों के लिए भी उतना ही वांछनीय है, केवल हमारे पास उस भारत को पहचान सकनेवाली दृष्टि की आवश्यकता है ।

यदि आपकी अभिरुचि की पैठ किसी विशेष क्षेत्र में है, तो उसके विकास और पोषण के लिए आपको भारत में पर्याप्त अवसर मिलेगा । यदि आपने उन बड़ी-बड़ी समस्याओं में रुचि ली हो, जिनके बारे में अपने यहाँ के श्रेष्ठतम विचारक सोच-विचार किया करते हैं, तो आपको अपने भारत प्रवास को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र से निर्वासन समझ लेने की कोई आवश्यकता नहीं ।

यदि आप भू-विज्ञान में रुचि रखते हैं तो हिमालय से श्रीलंका तक का विशाल भू-प्रदेश आपकी प्रतीक्षा कर रहा है ।

यदि आप वनस्पति जगत में विचरना चाहते हैं तो भारत एक ऐसी फुलवारी है जो हकर्स जैसे अनेक वनस्पति वैज्ञानिकों को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है ।

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

यदि आपको रुचि जीव-जन्तुओं के अध्ययन में है तो आपका ध्यान श्री हेकल की ओर अवश्य होगा, जो इन दिनों भारत के कान्तारों की छानबीन के साथ ही भारतीय समुद्रतट से मोती भी बीन रहे हैं । भारत का यह निवास काल उनके जीवन के सबसे सुनहले सपन की साकारता जैसा है ।

यदि आप नृवंश विद्या में अभिरुचि रखते हैं तो भारत आपको एक जीता-जागता संग्रहालय ही लगेगा ।

यदि आप पुरातत्त्व प्रेमी हैं, और यदि आपने वहाँ रहते हुए पुरातत्त्व के उत्खनन के द्वारा एक प्राचीन चाकू या चकमक या किसी प्राणी का कोई भाग ढूँढ निकालने के आनन्द का अनुभव किया हो तो आपको जनरल कनिंघम की भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ लेनी चाहिए और तब भारत के बौद्ध सम्राटों के द्वारा निर्मित (नालन्दा जैसे) विश्वविद्यालयों अथवा विहारों के ध्वंसावशेषों को खोद निकालने के लिए आपका फावड़ा आतुर हो उठेगा ।

यदि आपके मन में पुराने सिक्कों के लिए लगाव है, तो भारतभूमि में ईरानी, केरियन, थ्रेशियन, पार्थियन, कुषाणी, मेकेडोनियन, शकों, रोमन और मुस्लिम शासकों के सिक्के प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होंगे । जब वारेन हेस्टिंग्स भारत का गवर्नर जनरल था तो वाराणसी के पास उसे 172 दारिस नामक सोने के सिक्कों से भरा एक घड़ा मिला था । वारेन हेस्टिंग्स ने अपने मालिक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशक मंडल की सेवा में सोने के सिक्के यह समझकर भिजवा दिये कि यह एक ऐसा उपहार होगा जिसकी गणना उसके द्वारा प्रेषित सर्वोत्तम दुर्लभ वस्तुओं में की जाएगी और इस प्रकार वह स्वयं को अपने मालिकों की दृष्टि में एक महान उदार व्यक्ति प्रमाणित कर देगा । किन्तु उन दुर्लभ प्राचीन स्वर्ण मुद्राओं की यही नियति थी कि कम्पनी के निदेशक उनका ऐतिहासिक महत्त्व समझ ही न पाए और उन्होंने उन मुद्राओं को गला डाला । जब वारेन हेस्टिंग्स इंग्लैंड लौटा तो वे स्वर्ण मुद्राएँ नष्ट हो चुकी थीं । अब यह आप लोगों पर निर्भर करता है कि आप ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ भविष्य में कभी न होने दें ।

दैवत विज्ञान पर भारत के प्राचीन वैदिक दैवत विज्ञान के कारण जो नया प्रकाश पड़ा है, उसके फलस्वरूप सम्पूर्ण दैवत विज्ञान को नया स्वरूप प्राप्त हो गया है । किन्तु बावजूद इसके कि सच्चे दैवत विज्ञान की एक आधारशिला रखी जा चुकी है, इस विज्ञान की व्यापक रूपरेखाएँ अभी निर्मित होनी हैं और यह कार्य जितने सही ढंग से भारत में हो सकता है, अन्यत्र कहीं नहीं ।

नीति कथाओं के अध्ययन क्षेत्र में भी भारत के कारण नवजीवन का संचार हो चुका है, क्योंकि भारत के कारण ही समय-समय पर नानाविध साधनों और मार्गों के द्वारा अनेक नीति कथाएँ पूर्व से पश्चिम की ओर आती रही हैं । हमारे यहाँ प्रचलित कहावतों और दन्तकथाओं का प्रमुख स्रोत अब बौद्ध धर्म को माना जाने लगा है । किन्तु यहाँ भी अनेक समस्याएँ ऐसी हैं, जो अपने समाधान की प्रतीक्षा कर रही हैं । उदाहरण के लिए 'शेर की खाल में गधा' की कहावत को ही ले लीजिए । यह कहावत सबसे पहले यूनान के प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम दार्शनिक प्लेटो के

क्रटिलस में मिलती है । तो क्या यह कहावत पूर्व से उधार ली गई थी, और इसी प्रकार हम न्यौले या चूहे से सम्बद्ध उस नीति कथा को भी ले सकते हैं जिसे एफ्रोडाइट ने एक सुन्दरी के रूप में परिवर्तित कर दिया था किन्तु जो एक चूहे को देखते ही तत्काल उसकी ओर आकृष्ट हो गयी थी । यह भी संस्कृत की एक कथा से सर्वांश में मिलती-जुलती एक कहानी है । किन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह कहानी यूनान में कैसे पहुँची और वहाँ ईसा पूर्व चौथी सदी में ही स्ट्रटिस की कहानियों में स्थान कैसे पा गयी ? इस क्षेत्र में भी अभी बहुत काम करना होगा ।

हमें इससे भी और अधिक प्रत्नयुग में प्रवेश करना होगा । वहाँ भी भारत तथा पश्चिम की अनेक दन्तकथाओं में आश्चर्यजनक अनुरूपताएँ मिलेंगी । यद्यपि अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये दन्तकथाएँ पूर्व से पश्चिम को अथवा पश्चिम से पूर्व को गयीं, तथापि यह असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो चुका है कि सोलोमन के समय में ही भारत, सीरिया और फिलीस्तीन के मध्य आवागमन के साधन सुलभ हो चुके थे । कुछ संस्कृत शब्दों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हाथी-दाँत, बन्दर, मोर और चन्दन आदि जिन वस्तुओं के ओफिर से निर्यात की बात बाइबल में कही गयी है, वे वस्तुएँ भारत के सिवा किसी अन्य देश से नहीं लाई जा सकतीं । और यह मान लेने का भी कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि भारत तथा फारस की खाड़ी और लाल सागर व भूमध्य सागर के बीच व्यापारिक सम्बन्ध कभी बिलकुल ठप्प हो गया था । यहाँ तक कि 'शाहनामा' के रचनाकाल (दसवीं-ग्यारहवीं सदी) में भी (भारत के साथ यूरोप के ये व्यापारिक सम्बन्ध) बन्द नहीं हुए थे ।

आपमें से कइयों ने भाषाओं का ही नहीं, भाषाविज्ञान का भी अध्ययन किया होगा । तो आपको क्या भारत से बढ़कर दूसरा कोई देश दिखाई देता है जहाँ केवल शब्दों का ही नहीं, बल्कि व्याकरणात्मक तत्त्वों के विकास और क्षय से सम्बद्ध भाषावैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण अवसर प्राप्त हो सके ? वहाँ आपको आर्य, द्रविड़ और मुण्डा जैसी अनेक भारतवासी जातियों की बोलचाल की भाषाओं का ही नहीं, अपितु उनके साथ यूनानी, शूची-हूण-अरब, ईरानी और मुगल आक्रमणकारियों व विजेताओं की भाषाओं के सम्मिश्रण की अत्यन्त रोचक भाषावैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन का भी सुयोग प्राप्त हो सकता है ।

यदि आप विधिशास्त्र या कानून के विद्यार्थी हैं तो आपको विधि-संहिताओं के एक ऐसे इतिहास की जाँच-पड़ताल का अवसर मिलेगा जो यूनान, रोम या जर्मनी के ज्ञात विधिशास्त्रों के इतिहास से सर्वथा भिन्न होते हुए भी इनके साथ समानताओं और विभिन्नताओं के कारण विधिशास्त्र के किसी भी विद्यार्थी के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है । उदाहरण के लिए हम धर्मसूत्रों या समयाचारिक सूत्रों को ही ले लें । ये धर्मसूत्र मानवधर्मशास्त्र जैसे परवर्ती विधिग्रन्थों की आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराते हैं ।

यदि आप लोगों को अत्यंत सरल राजनैतिक इकाइयों के निर्माण और विकास से सम्बद्ध प्राचीन युग के कानून के पुरातन रूपों के बारे में इधर जो अनुसंधान हुए हैं, उनके महत्त्व और

वैशिष्ट्य को परख सकने की क्षमता प्राप्त करनी है, तो आपको इसके लिए आज भारत की ग्राम पंचायतों के रूप में इसके प्रत्यक्ष दर्शन का सुयोग अनायास ही मिल जाएगा। भारत में प्राचीन स्थानीय शासन प्रणाली या पंचायत प्रथा को समझने-समझाने का बहुत बड़ा क्षेत्र विद्यमान है।

भारत में धर्म के वास्तविक उद्भव, उसके प्राकृतिक विकास तथा उसके अपरिहार्य क्षीयमाण रूप का प्रत्यक्ष परिचय मिल सकता है। भारत ब्राह्मण या वैदिक धर्म की भूमि है, बौद्ध धर्म की यह जन्मभूमि है, पारसियों के जरथुस्त्र धर्म की यह शरणस्थली है। आज भी यहाँ नित्य नये मत-मतान्तर प्रकट व विकसित होते रहते हैं।

भारत में आप अपने-आपको सर्वत्र अत्यन्त प्राचीन और सुदूर भविष्य के बीच खड़ा पायेंगे। वहाँ आपको ऐसे सुअवसर भी मिलेंगे जो किसी पुरातन विश्व में ही सुलभ हो सकते हैं। आप आज की किसी भी ज्वलंत समस्या को ले लीजिए। वह समस्या चाहे लोकप्रिय शिक्षा से सम्बद्ध हो, या उच्च शिक्षा, चाहे संसद में प्रतिनिधित्व की बात हो अथवा कानून बनाने की बात हो, चाहे प्रवास सम्बन्धी कानून हो अथवा अन्य कोई कानूनी मसला, सीखने या सिखाने योग्य कोई बात क्यों न हो, भारत के रूप में आपको ऐसी प्रयोगशाला मिलेगी जैसी विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। संस्कृत भाषा के द्वारा आपको चिन्तन की ऐसी गम्भीर धारा में अवगाहन का अवसर मिलेगा जो अभी तक आपके लिए अज्ञात थी। यहाँ आपको मानव हृदय की गहनतम सहानुभूति और सदाशयता को जगानेवाले पाठ भी प्रचुर परिमाण में पढ़ने को मिल सकते हैं।

मानव मस्तिष्क के इतिहास के उस अध्ययन में, या यूँ कहें कि हमारे अपने स्वरूप के अध्ययन में, अपने सच्चे आत्मरूप की पहचान में भारत का स्थान किसी भी देश के बाद (दूसरे नम्बर पर) नहीं रखा जा सकता। मानव मस्तिष्क के चाहे किसी भी क्षेत्र को आप अपने विशिष्ट अध्ययन का विषय क्यों न बना लें, चाहे वह भाषा का क्षेत्र हो या धर्म का, दैवत विज्ञान का हो या दर्शन का, चाहे विधिशास्त्र या कानून का हो अथवा रीति-रिवाजों व परम्पराओं का, प्राचीन कला या शिल्प का हो अथवा पुरातन विज्ञान का, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में विचरण करने के लिए भले ही आप चाहें या न चाहें आपको भारत की शरण लेनी ही होगी, क्योंकि मानव इतिहास से सम्बद्ध अत्यन्त बहुमूल्य और अत्यन्त उपादेय प्रामाणिक सामग्री का एक बहुत बड़ा भाग भारत और केवल भारत में ही संचित है।

यदि आप भारत के इतिहास के किसी एक अध्याय का भी सम्यक् अध्ययन, व्याख्या-विवेचन कर लें तो आप पायेंगे कि हमारे स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाए जानेवाले इतिहासों के सब अध्याय मिलकर एक क्षण के लिए भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

मैं अभी आज के भारतीय साहित्य की चर्चा करना नहीं चाहूँगा, किन्तु भारत की उस अत्यधिक प्राचीन भाषा की चर्चा करूँगा जिसका नाम है संस्कृत। अब आप पूछेंगे कि संस्कृत में ऐसी क्या बात है जिसके कारण हम उस पर इतना ध्यान दें तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से संस्कृत सर्वातिशायी क्यों है?

संस्कृत की सबसे पहली विशेषता है इसकी प्राचीनता, क्योंकि हम जानते हैं कि ग्रीक भाषा से भी संस्कृत का काल पुराना है। जिस रूप में आज यह हम तक पहुँची है, उसमें भी अत्यन्त प्राचीन तत्त्व भली-भाँति सुरक्षित है। ग्रीक और लैटिन भाषाएँ लोगों को सदियों से ज्ञात हैं और निस्संदेह यह भी अनुभव किया जाता रहा था कि इन दोनों भाषाओं में कुछ-न-कुछ साम्य अवश्य है। किन्तु समस्या यह थी कि इन दोनों भाषाओं में विद्यमान समानता को व्यक्त कैसे किया जाए ? कभी ऐसा होता था कि किसी ग्रीक शब्द की निर्माण प्रक्रिया में लैटिन को कुंजी मान लिया जाता था और कभी किसी लैटिन शब्द के रहस्यों को खोलने के लिए ग्रीक का सहारा लेना पड़ता था। उसके बाद जब गॉथिक और एंग्लो-सैक्सन जैसी ट्यूटानिक भाषाओं, पुरानी केल्टिक तथा स्लाव भाषाओं का भी अध्ययन किया जाने लगा तो इन भाषाओं में किसी-न-किसी प्रकार का पारिवारिक सम्बन्ध स्वीकार करना ही पड़ा। किन्तु इन भाषाओं में इतनी अधिक समानता कैसे आ गई, और समानताओं के साथ ही साथ इतना अधिक अन्तर भी इनमें कैसे पड़ गया, यह रहस्य बना ही रहा और इसी कारण ऐसे अनेक अहेतुकवाद उठ खड़े हुए जो भाषाविज्ञान के मूल सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत हैं। किंतु ज्यूँ ही इन भाषाओं के बीच में संस्कृत आ बैठी कि तत्काल लोगों को एक सही प्रकाश और गर्मी का अहसास होने लगा, और इसी से भाषाओं का पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्ट हो गया। निश्चित ही संस्कृत इन सब भाषाओं की अग्रजा है। उससे हमें ऐसी बहुत-सी बातें ज्ञात हो सकीं जो इस परिवार की किसी अन्य भाषा में सर्वथा भुला दी गई थीं।

यदि आग के लिए संस्कृत का अग्नि और लैटिन का इग्निस एक ही शब्द मिल जाता है तो हम निर्भ्रान्त रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि एक-दूसरे से अविभक्त आर्यों को अग्नि का ज्ञान हो चुका था। साथ ही लिथ्वानियन 'उग्निस' और स्कोटिक भाषा के 'इंगले' शब्द यह दर्शाते हैं कि स्लाव या ट्यूटानिक भाषाएँ भी इस शब्द से परिचित थीं, भले ही वहाँ कालान्तर में अग्नि के लिए दूसरे शब्द भी क्यों न गढ़ लिए गए हों।

दूसरी वस्तुओं के समान शब्द भी मर-मिट जाते हैं और यह बता पाना सरल नहीं है कि कोई शब्द किसी एक भूभाग में क्यों और कैसे पनपता रहता है जबकि दूसरे क्षेत्र में वही शब्द मुरझाकर सर्वथा लुप्त हो जाता है।

कल्पना कीजिए कि यदि हम यह जानना चाहें कि आर्य लोग अनेक शाखाओं में विभक्त होने से पूर्व चूहे के बारे में जानते थे या नहीं, तो हमें आर्य भाषाओं के शब्दकोश देखने होंगे। वहाँ हम पायेंगे कि संस्कृत में इसे मूषः, ग्रीक में मूस, लैटिन में मुस, पुरानी स्लावोनिक में माइस और पुरानी उच्च जर्मन में मुस कहते हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उस प्राचीन युग में, जिसकी काल-गणना हम अपने नहीं अपितु भारत के तिथिक्रम के आधार पर ही कर सकते हैं, चूहा ज्ञात था और उसका मूष नाम भी रख दिया गया था, ताकि किसी अन्य कीट-पतंग के साथ इसकी पहचान में कहीं कोई घपला न हो जाए।

इस प्रकार पुराने पत्थरों या काँच के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर बनाये गये पच्चीकारी के

चित्र की भाँति आर्यों के विभाजन से पूर्व की सभ्यता व सांस्कृतिक अवस्था का कुछ कमोबेश एक परिपूर्ण चित्र बनाया जा सकता है और बनाया जा चुका है।

इतना ही क्यों, भारत व यूनान, इटली और जर्मनी में बिखरे पड़े अवशेषों के आधार पर आर्यों की जिस मूल भाषा का ढाँचा खड़ा किया गया है, वह भी उन लोगों की अत्यन्त दीर्घकालीन चिन्तन-प्रक्रिया की ही उपलब्धि थी।

अब आप ही अन्दाजा लगाइए कि संस्कृत, ग्रीक और लैटिन इन तीनों भाषाओं के एक सामान्य मूल उद्गम-स्रोत तक पहुँचने के लिए हमें कितना पीछे हटना होगा। इस प्रकार हम उस सम्मिलन स्थल पर पहुँच जाएँगे जहाँ से हिन्दू, ग्रीक, यूनानी आदि शक्तिशाली जातियाँ एक-दूसरी से पृथक हुई थीं और यह भी कि उस सुदूर अतीत में भी वह हमारी आदि आर्य भाषा एक ऐसी चट्टान के रूप में दिखाई देती है, जो चिन्तन-परम्परा के प्रवाहों के उतार-चढ़ाव से घिस-माँजकर चिकनी और स्पष्ट हो चुकी थी। हमें उस भाषा में प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनी हुई अस्मि, ग्रीक एस्मि, जैसी यौगिक क्रियाएँ मिलती हैं। 'मैं हूँ' जैसे भाव को व्यक्त करने के लिए भला किन्हीं दूसरी भाषाओं में 'अस्मि' जैसा शुद्ध और उपयुक्त शब्द कहाँ मिल पाएगा! उन भाषाओं में खड़ा होता हूँ, या ठहरता हूँ, मैं जीता हूँ, मैं उगता या उत्पन्न होता हूँ, या मैं बदलता हूँ जैसी क्रियाएँ भले ही मिल जायें किन्तु 'अस्मि' (मैं हूँ) यह क्रिया तो केवल आर्य भाषाओं में ही उपलब्ध हो सकती है।

मैं इसे ही वास्तविक अर्थों में इतिहास मानता हूँ और यह एक ऐसा इतिहास है जो राज्यों के दुराचारों और अनेक जातियों की क्रूरताओं की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञातव्य और पठनीय है।

एक भाषा बोलना एक (माँ के) दूध पीने से भी बढ़कर एकात्मकता का परिचायक है और भारत की पुरातन भाषा संस्कृत सारभूत रूप से वही है जो ग्रीक, लैटिन या एंग्लो सेक्सन भाषाएँ हैं। यह एक ऐसा पाठ है, जिसे हम भारतीय भाषा और साहित्य के अध्ययन के बिना कभी न पढ़ पाते, और भारत यदि हमें इस एक ही पाठ के सिवा और कुछ भी न पढ़ा पाता तो भी हम इससे ही इतना कुछ सीख जाते जितना दूसरी कोई भी भाषा कभी न सिखा पाती।

संस्कृत भाषा और उसका साहित्य – याद रहे कि यह साहित्य तीन हजार से भी अधिक लम्बे काल तक फैला हुआ है और यूनान व रोम के सम्पूर्ण साहित्य से भी कहीं अधिक विशाल है। मुझे उस एक दिन की भी याद है जब इतनी गर्मी थी कि किसी काम में मन ही नहीं लग रहा था। तभी एक सान्ध्य कक्षा में हमारे एक मास्टर (डॉ० क्ली) ने बताया कि भारत में एक ऐसी भाषा बोली जाती थी जो ग्रीक और लैटिन के ही क्यों जर्मन और रूसी के भी सर्वथा समान थी। यह सुनकर पहले तो हम लोगों ने सोचा कि मास्टर साहब शायद आज हल्के-फुल्के मूड में हैं और कुछ मजाकिया बातें कर रहे हैं। किन्तु मास्टर साहब ने तो तत्काल संस्कृत, ग्रीक और लैटिन के संख्यावाचक शब्द, सर्वनाम और समान धातुरूप श्यामपट्ट पर लिख दिखाए। अब तो हमारे सामने ऐसे तथ्य उपस्थित थे जिनके आगे नतमस्तक होना ही पड़ा।

भारत के बारे में एक प्रकार के सुनिश्चित ज्ञान को मैं अपने व्यापक तथा इतिहास के ज्ञान के लिए आवश्यक मानता हूँ। भारत के साथ हमारे परिचय के फलस्वरूप आज यूरोपवासियों की धारणाएँ बदल चुकी हैं और बहुत विस्तृत हो गयी हैं। अब हम यह जानने लगे हैं कि जैसा पहले समझा जाता था, वास्तव में हम उससे कुछ भिन्न हैं। कल्पना कीजिए कि किसी छोटी-छोटी प्रलय या भौगोलिक उथल-पुथल के कारण कभी अमेरिका के लोग अपने आपके अंग्रेजी मूल को सर्वथा भूल जाएँ और तब दो-तीन हजार वर्ष बाद उन्हें अकस्मात् मालूम हो जाए कि सत्रहवीं सदी में ऐसी ही अंग्रेजी भाषा और उसका साहित्य विद्यमान था, तो वे आश्चर्याभिभूत होंगे। संस्कृत की खोज से हमारे लिए आज ठीक वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके कारण हमारी ऐतिहासिक चेतना में एक नया अध्याय जुड़ गया है और हमारे भूले-बिसरे बचपन की मधुर स्मृतियाँ फिर से साकार हो उठी हैं।

संस्कृत तथा दूसरी आर्य भाषाओं के अध्ययन ने हमारे लिए बस इतना ही किया हो, सो बात भी नहीं है। इससे मानव जाति के बारे में हमारे विचार व्यापक और उदार ही नहीं बने हैं तथा लाखों-करोड़ों अजनबियों तथा बर्बर समझे जानेवाले लोगों को भी अपने ही परिवार के सदस्य की भाँति गले लगाना ही नहीं सीखे हैं, अपितु इसने मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास को एक वास्तविक रूप में प्रकट कर दिखाया है, जो पहले नहीं हो पाया था।

भाषाविज्ञान के द्वारा हमने अबतक जो निष्कर्ष निकाले हैं वे संस्कृत की सहायता के बिना कदापि नहीं प्राप्त किये जा सकते थे। आज हमारा इतिहास का यह अध्ययन- प्रत्न मानव को -'अपने पूर्व को, अपने वास्तविक पूर्व को पहचानिये' - इस फ्रेंच उक्ति को क्रियान्वित कर सकने योग्य बनाता है। इस प्रकार मनुष्य इस विश्व में अपना वास्तविक स्थान निश्चित कर पाता है और यह जान लेता है कि उसने अपनी जीवन यात्रा कहाँ से आरंभ की थी, उसे कौन-सा मार्ग अपनाना और कहाँ पहुँचना है।

हम सब पूर्व से आये हैं। हमारे जीवन में जो भी कुछ अत्यधिक मूल्यवान है, वह हमें पूर्व से मिला है और पूर्व को पहचान लेने से ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जिसने इतिहास की वास्तविक शिक्षा का कुछ लाभ उठाया है, भले ही वह प्राच्य-विद्या-विशारद न भी हो तो भी यह अनुभव अवश्य होगा कि वह नानाविध स्मृतियों से भरे अपने पुराने घर की ओर जा रहा है।

अगले वर्ष जब आप लोग भारत के तट पर पहुँचेंगे तो बजाय इसके कि आपका दिल बैठने लगे, मैं चाहता हूँ कि आपमें से प्रत्येक को ठीक वैसा ही अनुभव हो सके जैसा कि आज से सौ वर्ष पहले सर विलियम जोन्स को उस समय हुआ था जब उन्होंने इंग्लैंड से आरम्भ की हुई अपनी लम्बी समुद्र यात्रा की समाप्ति पर क्षितिज में प्रकट होते हुए भारत के तट का दर्शन किया था। सुनिये, उन्हीं के शब्दों में -"जिस भारत यात्रा की ललक मेरे मन में उठ रही थी, पिछले 1783 के अगस्त में उस देश के लिए मैं समुद्र यात्रा कर रहा था कि एक दिन सन्ध्या के समय दिनभर में देखे गए दृश्यों की जाँच-पड़ताल करते हुए मैंने पाया कि भारत अब ठीक

हमारे सामने था । फारस या ईरान हमारे बाईं ओर था तथा अरब सागर से आती हुई ठण्डी हवाएँ हमारे जहाज के पिछले भाग से टकरा रही थीं । एशिया के सुविस्तीर्ण क्षेत्रों से चारों ओर से घिरी ऐसी श्रेष्ठ रंगभूमि के मध्य अपने आपको पाकर मुझे जिस आनन्द का अनुभव हुआ, वह वस्तुतः अनिर्वचनीय है । एशिया की यह भूमि नानाविध ज्ञान-विज्ञान की धात्री, आनन्ददायक ललित तथा उपयोगी कलाओं की जननी, एक से एक बढ़कर शानदार कार्यकलापों की दृश्यभूमि, मानव प्रतिभा के उत्पादन के लिए अत्यन्त उर्वर क्षेत्र तथा धर्म, राज्य, सरकारों, कानून या विधि-संहिता, रीति-रिवाज, परम्पराओं, भाषा, लोगों के रंग रूप और आकार-प्रकार आदि की दृष्टि से अपनी अत्यधिक विविधता के कारण सदा से सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखी जाती रही है ।

मैं यह कहे बिना नहीं रह सका कि कितना अधिक विशाल और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र अभी तक अनदेखा ही रह गया है और कितने बड़े व ठोस लाभ अभी तक प्राप्त नहीं किए जा सके हैं !''

भारत को सर विलियम जोन्स जैसे अभी न जाने कितने स्वप्नदर्शियों की आवश्यकता है । जब अपने जहाज के डेक पर अकेले खड़े 37 वर्ष के सर जोन्स ने देखा था कि सूर्य अपरान्त सागर में डूब रहा है, तो उनके पीछे इंग्लैंड की सुमधुर स्मृतियाँ तथा उनके सामने भारत की आशा जगमगा रही थी । उन्हें ईरान तथा उसके प्राचीन सम्राट मानो प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित लग रहे थे, अरब सागर की शीतल मन्द समीर के झोंके उन्हें झुला रहे थे । ऐसे स्वप्नदर्शी ही यह समझ सकते हैं कि अपने स्वप्नों को साकार और अपनी कल्पनाओं को वास्तविकता में परिणत कैसे किया जा सकता है ।

और जो बात या स्थिति आज से सौ वर्ष पहले थी, आज भी वैसी ही है । या यूँ कहें कि आज भी वैसी हो ही सकती है । यदि आप लोग चाहें तो भारत के बारे में वैसे ही सुनहरे सपने देख सकते हैं और भारत पहुँचने के बाद एक से बढ़कर एक शानदार काम भी कर सकते हैं । आप लोग विश्वास रखें कि यद्यपि सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता पहुँचने के बाद से अब तक प्राच्य देशों के इतिहास और साहित्य के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक शानदार बड़ी-बड़ी अनेक विजयें प्राप्त की हैं, तथापि किसी भी नए सिकन्दर को यह सोचकर निराश नहीं हो जाना चाहिए कि गंगा और सिन्धु के पुराने मैदानों में अब उसके लिए विजय करने को कुछ भी शेष नहीं रहा ।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. समस्त भूमंडल में सर्वविद् सम्पदा और प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण देश भारत है । - लेखक ने ऐसा क्यों कहा है ?
2. लेखक की दृष्टि में सच्चे भारत के दर्शन कहाँ हो सकते हैं और क्यों ?
3. भारत को पहचान सकने वाली दृष्टि की आवश्यकता किनके लिए वांछनीय है और क्यों ?
4. लेखक ने किन विशेष क्षेत्रों में अभिरुचि रखने वालों के लिए भारत का प्रत्यक्ष ज्ञान आवश्यक बताया है ?
5. लेखक ने वारेन हेस्टिंग्स से संबंधित किस दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना का हवाला दिया है और क्यों ?
6. लेखक ने नीतिकथाओं के क्षेत्र में किस तरह भारतीय अवदान को रेखांकित किया है ?
7. भारत के साथ यूरोप के व्यापारिक संबंध के प्राचीन प्रमाण लेखक ने क्या दिखाए हैं ?
8. भारत की ग्राम पंचायतों को किस अर्थ में और किनके लिए लेखक ने महत्त्वपूर्ण बतलाया है ? स्पष्ट करें ।
9. धर्मों की दृष्टि से भारत का क्या महत्त्व है ?
10. भारत किस तरह अतीत और सुदूर भविष्य को जोड़ता है ? स्पष्ट करें ।
11. मैक्समूलर ने संस्कृत की कौन-सी विशेषताएँ और महत्त्व बतलाये हैं ?
12. लेखक वास्तविक इतिहास किसे मानता है और क्यों ?
13. संस्कृत और दूसरी भारतीय भाषाओं के अध्ययन से पाश्चात्य जगत् को प्रमुख लाभ क्या-क्या हुए ?
14. लेखक ने भारत के लिए नवागंतुक अधिकारियों को किसकी तरह सपने देखने के लिए प्रेरित किया है और क्यों ?
15. लेखक ने नया सिकंदर किसे कहा है ? ऐसा कहना क्या उचित है ? लेखक का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए ।

पाठ के आस-पास

1. जनरल कनिंघम कौन थे और उनका क्या महत्त्व है ? शिक्षक से मालूम करें ।
2. विलियम जोंस के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी इकट्ठी कर मित्रों से उन पर चर्चा करें ।
3. सिकंदर कौन थे ? भारत के प्रसंग में उनका किस तरह उल्लेख होता है ? इतिहास के शिक्षक से जानकारी प्राप्त करें ।
4. धर्मसूत्र और समयाचारिक सूत्र क्या है ? कुछ प्रमुख सूत्रों के नाम मालूम करें ।
5. मैक्समूलर के जीवन और कार्यों के बारे में जानकारी एकत्र कर अपने शिक्षक से चर्चा करें ।

6. पाठ में आए ऐतिहासिक जातियों और देशों के सूचक शब्दों को चुनकर उनके अर्थ मालूम करें ।

भाषा की बात

1. **निम्नांकित वाक्यों से विशेष्य और विशेषण पद चुनें –**
   (क) उत्कृष्टतम उपलब्धियों का सर्वप्रथम साक्षात्कार
   (ख) प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शनिकों का अध्ययन करनेवाले हम यूरोपियन लोग
   (ग) अगला जन्म तथा शाश्वत जीवन
   (घ) दो-तीन हजार वर्ष पुराना ही क्यों, आज का भारत भी
   (ङ) भूले-बिसरे बचपन की मधुर स्मृतियाँ
   (छ) लाखों-करोड़ों अजनबियों तथा बर्बर समझे जानेवाले लोगों को भी
2. 'अग्रजा' की तरह 'जा' प्रत्यय जोड़कर तीन-तीन शब्द बनाएँ –
3. **निम्नलिखित उपसर्गों से तीन-तीन शब्द बनाएँ –**
   प्र, निः, अनु, अभि, वि
4. वास्तविक में 'इक' प्रत्यय है । 'इक' प्रत्यय से पाँच शब्द बनाएँ ।

शब्द निधि

अवलोकन : देखना, प्रतीति करना, महसूस करना
अवगाहन : स्नान, गहरे डूबकर समझने की कोशिश करना
वांछनीय : चाहने योग्य, कामना करने योग्य
नृवंश विद्या : नृतत्त्व शास्त्र, मानव शास्त्र
परिमाण : मात्रा
दारिस : मुद्रा का एक प्राचीन प्रकार
प्रेषित : भेजा हुआ
दैवत विज्ञान : देव विज्ञान
प्रत्नयुग : प्रागैतिहासिक युग, प्राचीन युग
अनुरूपता : समानता, सादृश्य
क्षय : छीजन, विनाश
अपरिहार्य : जिसे छोड़ा न जा सके, अनिवार्य
क्षीयमाण : नष्ट होता हुआ
मसला : मुद्दा, विषय
सदाशयता : उदारता, भलमनसाहत
सर्वातिशायी : जिसमें सारी चीजें समाहित हो जायें
विद्यमान : वर्तमान, उपस्थित
अहेतुकवाद : ऐसा सिद्धांत जिसमें हेतु या कारण की पहचान न हो सके
सर्वथा : पूरी तरह से
ज्ञातव्य : जानने योग्य
सारभूत : सार या निष्कर्ष कहा जाने योग्य, आधारभूत
अजनबी : अपरिचित, अज्ञात
बर्बर : जंगली, असभ्य
सुविस्तीर्ण : अतिविस्तृत, खुशफैल, पूरी तरह से फैला हुआ
अनिर्वचनीय : जिसकी व्याख्या न की जा सके, वाणी के परे
धात्री : पालन-पोषण करनेवाली, धारण करनेवाली
अपरांत : पश्चिमी
परिणत : परिवर्तित, जिसका परिणाम सामने आ गया हो
प्राच्य : पूर्वी (पाश्चात्य का विलोम), यहाँ भारतीय के अर्थ में

हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 ई० में आरत दुबे का छपरा, बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुआ । द्विवेदी जी का साहित्य कर्म भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास की रचनात्मक परिणति है । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बाँग्ला आदि भाषाओं व उनके साहित्य के साथ इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की व्यापकता व गहनता में पैठकर उनका अगाध पांडित्य नवीन मानवतावादी सर्जना और आलोचना की क्षमता लेकर प्रकट हुआ है । वे ज्ञान को बोध और पांडित्य की सहृदयता में ढाल कर एक ऐसा रचना संसार हमारे सामने उपस्थित करते हैं जो विचार की तेजस्विता, कथन के लालित्य और बंध की शास्त्रीयता का संगम है । इस प्रकार उनमें एकसाथ कबीर, तुलसी और रवींद्रनाथ एकाकार हो उठते हैं । उनकी सांस्कृतिक दृष्टि अपूर्व है । उनके अनुसार भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि समय-समय पर उपस्थित अनेक जातियों के श्रेष्ठ साधनांशों के लवण-नीर संयोग से विकसित हुई है ।

द्विवेदीजी की प्रमुख रचनाएँ हैं - 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क', 'कुटज', 'विचार-प्रवाह', 'आलोक पर्व', 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' (निबंध संग्रह); 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचंद्रलेख', 'पुनर्नवा', 'अनामदास का पोथा' (उपन्यास); 'सूर साहित्य', 'कबीर', 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप', 'नाथ संप्रदाय', 'कालिदास की लालित्य योजना', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' (आलोचना-साहित्येतिहास); 'संदेशरासक', 'पृथ्वीराजरासो', 'नाथ-सिद्धों की बानियाँ' (ग्रंथ संपादन); 'विश्व भारती' (शांति निकेतन) पत्रिका का संपादन । द्विवेदीजी को 'आलोकपर्व' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार, भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' सम्मान एवं लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि मिली । वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय, शांति निकेतन विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ विश्वविद्यालय आदि में प्रोफेसर एवं प्रशासनिक पदों पर रहे । सन् 1979 में दिल्ली में उनका निधन हुआ ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली से लिए गए प्रस्तुत निबंध में प्रख्यात लेखक और निबंधकार का मानववादी दृष्टिकोण प्रकट होता है । इस ललित निबंध में लेखक ने बार-बार काटे जाने पर भी बढ़ जाने वाले नाखूनों के बहाने अत्यंत सहज शैली में सभ्यता और संस्कृति की विकास-गाथा उद्घाटित कर दिखायी है । एक ओर नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की आदिम पाशविक वृत्ति और संघर्ष चेतना का प्रमाण है तो दूसरी ओर उन्हें बार-बार काटते रहना और अलंकृत करते रहना मनुष्य के सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक चेतना को भी निरूपित करता है । लेखक ने नाखूनों के बहाने मनोरंजक शैली में मानव-सत्य का दिग्दर्शन कराने का सफल प्रयत्न किया है । यह निबंध नई पीढ़ी में सौंदर्यबोध, इतिहास चेतना और सांस्कृतिक आत्मगौरव का भाव जगाता है ।

नाखून क्यों बढ़ते हैं

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं । अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है । मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका । हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अकसर उन्हें डाँटा करते हैं । पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं । काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर । आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं ?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था; बनमानुष जैसा । उसे नाखून की जरूरत थी । उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे । असल में वही उसके अस्त्र थे । दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था । उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था । फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा । पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा(रामचंद्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे) । उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए । इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था । मनुष्य और आगे बढ़ा । उसने धातु के हथियार बनाए । जिनके पास लोहे के अस्त्र और शस्त्र थे, वे विजयी हुए । देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के पास लोहे के अस्त्र थे । असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे । आर्यों के पास ये दोनों चीजें थीं । आर्य विजयी हुए । फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया । नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे । लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली । इतिहास आगे बढ़ा । पलीतेवाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है । नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है । पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं । अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता । तुम वही लाख वर्ष के पहले के नख-दंतावलंबी जीव हो – पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करने वाले और चरने वाले ।

ततः किम् । मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने

के लिए डाँटता है। किसी दिन – कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व – वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कमबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती ही जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है। यह तो उसका नवीनतम रूप है! मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचनेवाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणिविज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास-जन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजाने में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है – किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है ? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर ? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है – जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं ? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं । मैं भी पूछता हूँ – जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं ? – ये हमारी पशुता की निशानी हैं । भारतीय भाषाओं में प्राय: ही अंगरेजी के 'इण्डिपेण्डेन्स' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता । 15 अगस्त को जब अंगरेजी भाषा के पत्र 'इण्डिपेण्डेन्स' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे । 'इण्डिपेण्डेन्स' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना । अंगरेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेण्डेन्स' कह सकते हैं । मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंगरेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इण्डिपेण्डेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका ? उसने अपनी आज़ादी के जितने भी नामकरण किए – स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा । यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजाने में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है ? मुझे प्राणिविज्ञानी की बात फिर याद आती है – सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है ? स्वराज होने के बाद स्वभावत: ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाए । हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है । हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है । हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों । हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं । हमारे अनजाने में भी ये बातें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं । यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं । उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं । भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है । वह 'स्व' के बंधन को आसानी से छोड़ नहीं सकता । अपने-आप पर अपने-आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है । मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें । पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता । मरे बच्चे को गोद में दबाए रहने वाली 'बँदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती । परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसन्धित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें । कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते । भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं । सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात से भिन्न है! आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़-दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है -

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च॥

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म-निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था - बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा - प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई। आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ - बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस

प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है । उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी । शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा । तबतक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है । बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है । मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास – बिना सिखाए – आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है । बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं ।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है । मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है । परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है । नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस 'स्व'-निर्धारित आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है ।

कमबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा ।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. नाखून क्यों बढ़ते हैं ? यह प्रश्न लेखक के आगे कैसे उपस्थित हुआ ?
2. बढ़ते नाखूनों द्वारा प्रकृति मनुष्य को क्या याद दिलाती है ?
3. लेखक द्वारा नाखूनों को अस्त्र के रूप देखना कहाँ तक संगत है ?
4. मनुष्य बार-बार नाखूनों को क्यों काटता है ?
5. सुकुमार विनोदों के लिए नाखून को उपयोग में लाना मनुष्य ने कैसे शुरू किया ? लेखक ने इस संबंध में क्या बताया है ?
6. नख बढ़ाना और उन्हें काटना कैसे मनुष्य की सहजात वृत्तियाँ हैं ? इनका क्या अभिप्राय है ?
7. लेखक क्यों पूछता है कि मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है, पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? स्पष्ट करें ।
8. देश की आजादी के लिए प्रयुक्त किन शब्दों की अर्थ मीमांसा लेखक करता है और लेखक के निष्कर्ष क्या है ?
9. लेखक ने किस प्रसंग में कहा है कि बंदरिया मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती ? लेखक का अभिप्राय स्पष्ट करें ।
10. 'स्वाधीनता' शब्द की सार्थकता लेखक क्या बताता है ?
11. निबंध में लेखक ने किस बूढ़े का जिक्र किया है ? लेखक की दृष्टि में बूढ़े के कथनों की सार्थकता क्या है ?
12. मनुष्य की पूँछ की तरह उसके नाखून भी एक दिन झड़ जाएँगे । – प्राणिशास्त्रियों के इस अनुमान से लेखक के मन में कैसी आशा जगती है ?
13. 'सफलता' और 'चरितार्थता' शब्दों में लेखक अर्थ की भिन्नता किस प्रकार प्रतिपादित करता है ?
14. **व्याख्या करें** -
    (क) काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर ।
    (ख) मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ ।
    (ग) कमबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा ।
15. लेखक की दृष्टि में हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता क्या है ? स्पष्ट कीजिए ।
16. 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' का सारांश प्रस्तुत करें ।

पाठ के आस-पास

1. अपने शिक्षक से देवराज इंद्र और दधीचि मुनि की कथा मालूम करें ।
2. लेखक ने कालिदास के जिस कथन का हवाला दिया है उसका मूल रूप संस्कृत के शिक्षक से मालूम कर याद कर लें तथा उसके अर्थ को ध्यान में रखते हुए एक स्वतंत्र टिप्पणी लिखकर कक्षा में उसका पाठ करें ।
3. समय-समय पर भारत में बाहर से आनेवाली जातियों के नाम और समय अपने इतिहास के शिक्षक से मालूम करें ।

भाषा की बात

1. **निम्नलिखित शब्दों के वचन बदलें –**

   अल्पज्ञ, प्रतिद्वंद्वियों, हड्डी, मुनि, अवशेष, वृत्तियों, उत्तराधिकार, बँदरिया
2. **वाक्य-प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिंग-निर्णय करें –**

   बंदूक, घाट, सतह, अनुसंधित्सा, भंडार, खोज, अंग, वस्तु
3. **निम्नलिखित वाक्यों में क्रिया की काल रचना स्पष्ट करें –**

   (क) उन दिनों उसे जूझना पड़ता था ।

   (ख) मनुष्य और आगे बढ़ा ।

   (ग) यह सबको मालूम है ।

   (घ) वह तो बढ़ती ही जा रही है ।

   (ङ) मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा ।
4. 'अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है ।' -- इस वाक्य में आए विभक्ति चिह्नों के प्रकार बताएँ ।
5. स्वतंत्रता, स्वराज्य जैसे शब्दों की तरह 'स्व' लगाकर पाँच शब्द बनाइए ।
6. **निम्नलिखित के विलोम शब्द लिखें –**

   पशुता, घृणा, अभ्यास, मारणास्त्र, ग्रहण, मूढ़, अनुवर्तिता, सत्याचरण

शब्द निधि

अल्पज्ञ	:	कम ज्ञानवाला
दयनीय	:	दया करने योग्य
बेहया	:	बिना हया के, निर्लज्ज, बेशर्म
प्रतिद्वंद्वी	:	विरोधी
नखधर	:	नख को धारण करनेवाला, नाखून वाला
दंतावलंबी	:	दाँत का सहारा लेकर जीने वाला
विचरण	:	घूमना, भटकना
ततःकिम्	:	फिर क्या, इसके बाद क्याजौंडिस घात एवं बवासीर
असह्य	:	न सह सकने योग्य

पाशवी वृत्ति : पशु जैसा स्वभाव एवं आचरण
वर्तुलाकार : घुमावदार, गोलाकार
दंतुल : दाँत वाला, जिसके दाँत बाहर निकले हों
दाक्षिणात्य : दक्षिण का (दक्षिण भारतीय)
अधोगामिनी : नीचे की ओर जानेवाली
सहजात वृत्ति : जन्म के साथ पैदा होने वाली वृत्ति या स्वभाव
वाक् : वाणी, भाषा
निर्बोध : नासमझ, नादान
अनुवर्तिता : पीछे-पीछे चलना
अरक्षित : जो रक्षित न हो, खुला
अनुसंधित्सा : अनुसंधान की प्रबल इच्छा
सरबस : सर्वस्व, सबकुछ
पूर्वसंचित : पहले से इकट्ठा या जमा किया हुआ
समवेदना : दूसरे के दुख को महसूस करना
उद्भावित : प्रकट की गयी, उत्पन्न की गयी
असत्याचरण : असत्य आचरण, लोकविरुद्ध आचरण
निर्वैर : बिना वैर-विरोध के
उत्स : स्रोत, उद्गम, मूल
आत्मतोषण : अपने को संतुष्ट करना, अपने को समझाना
चरितार्थता : सार्थकता
निःशेष : जिसका शेष भी न बचे, सम्पूर्ण
तकाजा : माँग

❑❑❑

गुणाकर मुले

गुणाकर मुले का जन्म 1935 ई० में महाराष्ट्र के अमरावती जिले के एक गाँव में हुआ । उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा ग्रामीण परिवेश में हुई । शिक्षा की भाषा मराठी थी । उन्होंने मिडिल स्तर तक मराठी पढ़ाई भी । फिर वे वर्धा चले गये और वहाँ उन्होंने दो वर्षों तक नौकरी की, साथ ही अंग्रेजी व हिंदी का अध्ययन किया । फिर इलाहाबाद आकर उन्होंने गणित विषय में मैट्रिक से लेकर एम० ए० तक की पढ़ाई की । सन् 2009 में मुले जी का निधन हो गया ।

गुणाकर मुले के अध्ययन एवं कार्य का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है । उन्होंने गणित, खगोल विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, विज्ञान का इतिहास, पुरालिपिशास्त्र और प्राचीन भारत का इतिहास व संस्कृति जैसे विषयों पर खूब लिखा है । पिछले पच्चीस वर्षों में मुख्यत: इन्हीं विषयों से संबंधित उनके 2500 से अधिक लेखों तथा तीस पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है । उनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं - 'अक्षरों की कहानी', 'भारत : इतिहास और संस्कृति', 'प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक', 'आधुनिक भारत के महान वैज्ञानिक', 'मैंडलीफ', 'महान वैज्ञानिक', 'सौर मंडल', 'सूर्य', 'नक्षत्र-लोक', 'भारतीय लिपियों की कहानी', 'अंतरिक्ष-यात्रा', 'ब्रह्मांड परिचय', 'भारतीय विज्ञान की कहानी' आदि । गुणाकर मुले की एक पुस्तक है 'अक्षर कथा' । इस पुस्तक में उन्होंने संसार की प्राय: सभी प्रमुख पुरालिपियों की विस्तृत जानकारी दी है ।

प्रस्तुत निबंध गुणाकर मुले की पुस्तक 'भारतीय लिपियों की कहानी' से लिया गया है । इसमें हिंदी की अपनी लिपि नागरी या देवनागरी के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा स्पष्ट की गयी है । यहाँ हमारी लिपि की प्राचीनता, व्यापकता और शाखा विस्तार का प्रवाहपूर्ण शैली में प्रामाणिक आख्यान प्रस्तुत किया गया है । तकनीकी बारीकियों और विवरणों से बचते हुए लेखक ने निबंध को बोझिल नहीं होने दिया है तथा सादगी और सहजता के साथ जरूरी ऐतिहासिक जानकारियाँ देते हुए लिपि के बारे में हमारे भीतर आगे की जिज्ञासाएँ जगाने की कोशिश की है ।

नागरी लिपि

जिस लिपि में यह लेख छपा है, उसे हम नागरी या देवनागरी लिपि कहते हैं । करीब दो सदी पहले पहली बार इस लिपि के टाइप बने और इसमें पुस्तकें छपने लगीं, इसलिए इसके अक्षरों में स्थिरता आ गई है ।

हिंदी तथा इसकी विविध बोलियाँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं । हमारे पड़ोसी देश नेपाल की नेपाली (खसकुरा) व नेवारी भाषाएँ भी इसी लिपि में लिखी जाती हैं । मराठी भाषा की लिपि देवनागरी है । मराठी में सिर्फ एक अतिरिक्त ळ अक्षर है । हमने देखा है कि प्राचीन काल में संस्कृत व प्राकृत भाषाओं में यह ध्वनि थी और इसके लिए अनेक अभिलेखों में अक्षर मिलता है ।

देवनागरी लिपि के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि संसार में जहाँ भी संस्कृत-प्राकृत की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, वे प्रायः देवनागरी लिपि में ही छपती हैं । वैसे, विदेशों के कुछ पंडित, और उनका अनुकरण करते हुए कुछ भारतीय पंडित भी, ऊपर-नीचे कुछ चिह्न जोड़ते हुए रोमन अक्षरों में भी संस्कृत-प्राकृत के उद्धरण एवं ग्रंथ छपवाते हैं ।

गुजराती लिपि देवनागरी से अधिक भिन्न नहीं है । बंगला लिपि प्राचीन नागरी लिपि की पुत्री नहीं, तो बहन अवश्य है । हाँ, दक्षिण भारत की लिपियाँ वर्तमान नागरी से काफी भिन्न दिखाई देती हैं । लेकिन यह तथ्य हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि आज कुछ भिन्न-सी दिखाई देनेवाली दक्षिण भारत की ये लिपियाँ (तमिल-मलयालम और तेलुगु-कन्नड़) भी नागरी की तरह प्राचीन ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं ।

अभी कुछ समय पहले तक दक्षिण भारत में पोथियाँ लिखने के लिए नागरी लिपि का व्यवहार होता था । दरअसल, नागरी लिपि के आरंभिक लेख हमें दक्षिण भारत से ही मिले हैं । दक्षिण भारत की यह नागरी लिपि नंदिनागरी कहलाती थी । कोंकण के शिलाहार, मान्यखेट के राष्ट्रकूट, देवगिरि के यादव तथा विजयनगर के शासकों के लेख नंदिनागरी लिपि में हैं । पहले-पहल विजयनगर के राजाओं के लेखों की लिपि को ही नंदिनागरी नाम दिया गया था ।

दक्षिण भारत में तमिल-मलयालम और तेलुगु-कन्नड़ लिपियों का स्वतंत्र विकास हो रहा था । फिर भी दक्षिण भारत में अनेक शासकों ने नागरी लिपि का इस्तेमाल किया है । राजराज व राजेंद्र जैसे प्रतापी चोड़ राजाओं (ग्यारहवीं सदी) के सिक्कों पर नागरी अक्षर देखने को मिलते हैं । बारहवीं सदी के केरल के शासकों के सिक्कों पर 'वीरकेरलस्य' जैसे शब्द नागरी लिपि में

अंकित हैं। सुदूर दक्षिण से प्राप्त वरगुण का पलियम ताम्रपत्र (9वीं सदी) नागरी लिपि में है। इतना ही नहीं, श्रीलंका के पराक्रमबाहु, विजयबाहु (बारहवीं सदी) आदि शासकों के सिक्कों पर भी नागरी अक्षर देखने को मिलते हैं।

दूसरी ओर, उत्तर भारत में अल्पकाल के लिए इस्लामी शासन की नींव डालनेवाले महमूद गज़नवी (ग्यारहवीं सदी, पूर्वार्द्ध) के लाहौर के टकसाल में ढाले गए चाँदी के सिक्कों पर भी हम नागरी लिपि के शब्द देखते हैं। इन सिक्कों पर एक तरफ कूफी लिपि में कलमा अंकित है, तो दूसरी तरफ नागरी लिपि में अंकित है : **अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद**। ये सिक्के 1028 ई० में शुरू किए गए थे। स्मरण रहे कि लगभग इसी समय के दक्षिण के चोड राजाओं के सिक्कों पर भी नागरी लिपि में लिखे गए शब्द देखने को मिलते हैं।

महमूद गज़नवी के बाद के मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन खिलजी, शेरशाह आदि शासकों ने भी अपने सिक्कों पर नागरी शब्द खुदवाए हैं। बादशाह अकबर ने ऐसा सिक्का चलाया था जिस पर राम-सीता की आकृति है और नागरी लिपि में 'रामसीय' शब्द अंकित है।

उत्तर भारत में मेवाड़ के गुहिल, सांभर-अजमेर के चौहान, कन्नौज के गाहड़वाल, काठियावाड़-गुजरात के सोलंकी, आबू के परमार, जेजाकभुक्ति (बुंदेलखण्ड) के चंदेल तथा त्रिपुरा के कलचुरि शासकों के लेख नागरी लिपि में ही हैं। उत्तर भारत की इस नागरी लिपि को हम देवनागरी के नाम से जानते हैं।

उपर्युक्त जानकारी से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की आठवीं-नौवीं सदी से नागरी लिपि का प्रचलन सारे देश में था। यह एक सार्वदेशिक लिपि थी।

गुप्त काल की ब्राह्मी लिपि तथा बाद की सिद्धम् लिपि के अक्षरों के सिरों पर छोटी आड़ी लकीरें या छोटे ठोस तिकोन हैं। लेकिन नागरी लिपि की मुख्य पहचान यह है कि इसके अक्षरों के सिरों पर पूरी लकीरें बन जाती हैं और ये शिरोरेखाएँ उतनी ही लंबी रहती हैं जितनी कि अक्षरों की चौड़ाई होती है। हाँ, कुछ लेखों के अक्षरों के सिरों पर अब भी कहीं-कहीं तिकोन दिखाई देते हैं। दूसरी स्पष्ट विशेषता यह है कि इस प्राचीन नागरी के अक्षर आधुनिक नागरी से मिलते-जुलते हैं और इन्हें आसानी से, थोड़े अभ्यास के बाद, पढ़ा जा सकता है।

हम बता चुके हैं कि दक्षिण भारत से नागरी (नंदिनागरी) लिपि के लेख आठवीं सदी से मिलने लग जाते हैं और उत्तर भारत से नौवीं सदी से। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि अमुक निश्चित समय से ही नागरी लिपि की शुरुआत होती है। नागरी जैसे अक्षर कुछ पुराने लेखों में दिखाई देते हैं और पुरानी शैली के कुछ अक्षर नागरी लेखों में भी दिखाई देते हैं।

अब हमें यह देखना है कि इस नई लिपि को नागरी, देवनागरी या नंदिनागरी क्यों कहते हैं ?

नागरी नाम की उत्पत्ति तथा इसके अर्थ के बारे में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। एक मत के अनुसार, गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने पहले-पहल इस लिपि का इस्तेमाल किया, इसलिए इसका

नाम नागरी पड़ा । इस मत को स्वीकार करने में अनेक अड़चनें हैं । एक अन्य मत के अनुसार, बाकी नगर सिर्फ नगर हैं, परंतु काशी देवनगरी है, इसलिए काशी में प्रयुक्त लिपि का नाम देवनागरी पड़ा । स्पष्टत: यह एक संकुचित मत है ।

अल्बेरूनी ने अपने ग्रंथ (1030 ई०) में लिखा है कि मालवा में नागर लिपि का इस्तेमाल होता है । अत: यह स्पष्ट है कि 1000 ई० के आसपास नागर या नागरी नाम अस्तित्व में आ चुका था । दरअसल, यह शब्द और भी कुछ पहले अस्तित्व में आ चुका था ।

इतना निश्चित है कि यह नागरी शब्द किसी नगर अर्थात् बड़े शहर से संबंधित है । 'पादताडितकम्' नामक एक नाटक से जानकारी मिलती है कि पाटलिपुत्र (पटना) को नगर कहते थे । हम यह भी जानते हैं कि स्थापत्य की उत्तर भारत की एक विशेष शैली को 'नागर शैली' कहते हैं । अत: 'नागर' या 'नागरी' शब्द उत्तर भारत के किसी बड़े नगर से संबंध रखता है । असंभव नहीं कि यह बड़ा नगर प्राचीन पटना ही हो । चंद्रगुप्त (द्वितीय) 'विक्रमादित्य' का व्यक्तिगत नाम 'देव' था, इसलिए गुप्तों की राजधानी पटना को 'देवनगर' भी कहा जाता होगा । देवनगर की लिपि होने से उत्तर भारत की प्रमुख लिपि को बाद में देवनागरी नाम दिया गया होगा । लेकिन यह सिर्फ एक मत हुआ । हम सप्रमाण नहीं बता सकते कि यह देवनागरी नाम कैसे अस्तित्व में आया ।

ईसा की चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी के विजयनगर के शासकों ने अपने लेखों की लिपि को नंदिनागरी कहा है । विजयनगर के राजाओं के लेख कन्नड़-तेलुगु और नागरी लिपि में मिलते हैं । जानकारी मिलती है कि विजयनगर के राजाओं के शासनकाल में ही पहले-पहल वेदों को लिपिबद्ध किया गया था । यह वैदिक साहित्य निश्चय ही नागरी लिपि में लिखा गया होगा । विद्वानों का यह भी मत है कि वाकाटकों और राष्ट्रकूटों के समय के महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नंदिनगर (आधुनिक नांदेड़) की लिपि होने के कारण इसका नाम नंदिनागरी पड़ा ।

लेकिन हमें नामकरण के इस झंझट में अधिक नहीं पड़ना चाहिए । यह किसी नगर-विशेष की लिपि नहीं थी । क्योंकि ईसा की 8वीं-11वीं सदियों में हम नागरी लिपि को पूरे देश में व्याप्त देखते हैं । उस समय यह एक सार्वदेशिक लिपि थी ।

देशभर से नागरी लिपि के बहुत सारे लेख मिले हैं । इस नागरी लिपि के उदय के साथ भारतीय इतिहास व संस्कृति के एक नए युग की शुरुआत होती है । भारत इस्लाम के संपर्क में आता है और बाद में, 13वीं सदी से, इस्लामी शासकों का शासन आरंभ होता है । नए संप्रदाय अस्तित्व में आते हैं । भारतीय समाज एवं बहुत-से संप्रदायों को एक व्यापक नाम मिलता है – हिंदू समाज एवं हिंदू धर्म ।

नागरी लिपि के साथ-साथ अनेक प्रादेशिक भाषाएँ भी जन्म लेती हैं । आठवीं-नौवीं सदी से आरंभिक हिंदी का साहित्य मिलने लग जाता है । हिंदी के आदिकवि सरहपाद (आठवीं सदी) के 'दोहाकोश' की तिब्बत से जो हस्तलिपि मिली है वह दसवीं-ग्यारहवीं सदी की लिपि में लिखी

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

गई है । नेपाल से और भारत के जैन-भंडारों से भी इस काल की बहुत सारी हस्तलिपियाँ मिली हैं । इसी काल में भारतीय आर्यभाषा परिवार की आधुनिक भाषाएँ – मराठी, बंगला आदि जन्म ले रही थीं । इस समय से इन भाषाओं के लेख भी मिलने लग जाते हैं ।

दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषा परिवार की भाषाएँ, विशेषतः तमिल भाषा, अधिक प्राचीन हैं । लेकिन इन भाषाओं के लेख भी इसी समय से मिलने लग जाते हैं । इन भाषाओं के लिए दक्षिण भारत में विकसित ब्राह्मी लिपि का कुछ स्वतंत्र विकास हो रहा था; परंतु दक्षिण भारत में नागरी लिपि का भी खूब व्यवहार था । दरअसल, नागरी के आरंभिक लेख हमें विंध्य पर्वत के नीचे के दक्खन प्रदेश से ही मिलते हैं ।

अनेक विद्वानों का मत है कि दक्षिण भारत में नागरी लिपि का प्राचीनतम लेख राष्ट्रकूट राजा दंतिदुर्ग का सामांगड दानपत्र (754 ई०) है । दंतिदुर्ग ने ही राष्ट्रकूट शासन की नींव डाली थी । ये राष्ट्रकूट शासक मूलतः कर्णाटक के रहनेवाले थे और इनकी मातृभाषा कन्नड़ थी; परंतु ये खानदेश-विदर्भ में बस गए थे । दंतिदुर्ग के बाद उसका चाचा कृष्ण (प्रथम) राष्ट्रकूटों की गद्दी पर बैठा । इसी कृष्ण के शासनकाल में एलोरा (प्राचीन एलापुर, वेरूल) में अनुपम कैलाश मंदिर पहाड़ को काटकर बनाया गया था । कृष्ण के कुछ लेख भी मिले हैं । नौवीं सदी में अमोघवर्ष एक प्रख्यात राष्ट्रकूट राजा हुआ । इसी अमोघवर्ष ने राष्ट्रकूट की नई राजधानी मान्यखेट (मालखेड) की नींव डाली । अमोघवर्ष के शासनकाल में ही जैन गणितज्ञ महावीराचार्य (850 ई०) ने 'गणितसार-संग्रह' की रचना की थी ।

ईसा की आठवीं सदी में पश्चिम महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश में शिलाहारों का राज्य स्थापित हो गया था । ग्यारहवीं सदी में इनकी एक शाखा का राज्य कोल्हापुर-सातारा प्रदेश में भी स्थापित हो गया था । इन शिलाहारों के अनेक नागरी लेख मिले हैं ।

ग्यारहवीं सदी से नागरी लिपि में प्राचीन मराठी भाषा के लेख मिलने लग जाते हैं । अक्षी (कुलाबा जिला) से शिलाहार शासक केशिदेव (प्रथम) का एक शिलालेख (1012 ई०) मिला है, जो संस्कृत-मराठी भाषाओं में है और इसकी लिपि नागरी है । परंतु दिवें-आगर (रत्नागिरी जिला) ताम्रपट पूर्णतः मराठी में है । इसे मराठी का आद्यलेख माना जाता है । नागरी लिपि में लिखा गया यह ताम्रपट 1060 ई० का है ।

कर्णाटक प्रदेश का श्रवणबेलगोल स्थान जैनों का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है । यहाँ गोमटेश्वर का भव्य पुतला खड़ा है । इस स्थान से विविध भाषाओं और लिपियों के अनेक लेख मिले हैं। यह है – श्रीगंगराजे सुत्ताले करवियले (श्रीगंगराजा ने परकोटा बनवाया) । एक अन्य नागरी लेख में लिखा है-श्री चावुण्डराजे करविय ले । ये लेख दक्षिणी शैली की नागरी लिपि में हैं ।

देवगिरि के यादव राजाओं के नागरी लिपि में बहुत सारे लेख मिलते हैं । यादव राजा रामचंद्र (13वीं सदी) के ताम्रपत्र में 'ए' और 'ओ' की मात्राएँ अक्षरों की बाईं ओर हैं । कल्याण के पश्चिमी चालुक्य नरेशों के लेख भी नागरी लिपि में हैं ।

उड़ीसा (कलिंग प्रदेश) में ब्राह्मी की एक विशेष शैली, कलिंग लिपि का अस्तित्व था, परंतु गंगवंश के कुछ शासकों के लेख नागरी लिपि में भी मिलते हैं ।

नागरी लिपि के लेख न केवल पश्चिम तथा पूर्व भारत से बल्कि सुदूर दक्षिण भारत से भी मिले हैं । दक्षिण भारत के पांड्य प्रदेश से राजा वरगुण के पलियम ताम्रपत्र मिले हैं । प्रथम ताम्रपत्र तमिल से शुरू होता है, परंतु इसकी दूसरी ओर से नागरी लिपि (संस्कृत भाषा) का लेख शुरू होता है । यह ईसा की नौवीं सदी का है ।

उत्तर भारत में पहले-पहल गुर्जर-प्रतीहार राजाओं के लेखों में नागरी लिपि देखने को मिलती है । अनेक विद्वानों का मत है कि ये गुर्जर-प्रतीहार बाहर से भारत आए थे । ईसा की आठवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अवंती प्रदेश में इन्होंने अपना शासन खड़ा किया और बाद में कन्नौज पर भी अधिकार कर लिया था । मिहिर भोज, महेंद्रपाल आदि प्रख्यात प्रतीहार शासक हुए । मिहिर भोज (840-81 ई०) की ग्वालियर प्रशस्ति नागरी लिपि (संस्कृत भाषा) में है ।

धारा नगरी का परमार शासक भोज अपने विद्यानुराग के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है । परंतु इस शासक के बहुत कम अभिलेख मिले हैं । इस राजा के बंसवाड़ा और बेतमा दानपत्र क्रमशः 'कोंकणविजय' तथा 'कोंकणविजयपर्व' के अवसरों पर दिए गए थे । बेतमा (इंदौर के समीप) दानपत्र 1020 ई० का है ।

हमने उन्हीं आरंभिक नागरी लेखों की संक्षिप्त चर्चा की है जो देश के विभिन्न भागों से मिले हैं । 12वीं सदी के बाद हम उत्तर भारत के सभी हिंदू शासकों को देवनागरी लिपि का इस्तेमाल करते हुए देखते हैं । हमने यह भी देखा है कि कुछ इस्लामी शासकों ने भी अपने सिक्कों पर नागरी लेख अंकित किए हैं ।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. देवनागरी लिपि के अक्षरों में स्थिरता कैसे आयी है ?
2. देवनागरी लिपि में कौन-कौन सी भाषाएँ लिखी जाती हैं ?
3. लेखक ने किन भारतीय लिपियों से देवनागरी का संबंध बताया है ?
4. नंदी नागरी किसे कहते हैं ? किस प्रसंग में लेखक ने उसका उल्लेख किया है ?
5. नागरी लिपि के आरंभिक लेख कहाँ प्राप्त हुए हैं ? उनके विवरण दें ।
6. ब्राह्मी और सिद्धम लिपि की तुलना में नागरी लिपि की मुख्य पहचान क्या है ?
7. उत्तर भारत में किन शासकों के प्राचीन नागरी लेख प्राप्त होते हैं ?
8. नागरी को देवनागरी क्यों कहते हैं ? लेखक इस संबंध में क्या बताता है ?
9. नागरी की उत्पत्ति के संबंध में लेखक का क्या कहना है ? पटना से नागरी का क्या संबंध लेखक ने बताया है ?
10. नागरी लिपि कब एक सार्वदेशिक लिपि थी ?
11. नागरी लिपि के साथ-साथ किसका जन्म होता है ? इस संबंध में लेखक क्या जानकारी देता है ?
12. गुर्जर प्रतीहार कौन थे ?
13. निबंध के आधार पर काल-क्रम से नागरी लेखों से संबंधित प्रमाण प्रस्तुत करें ।

पाठ के आस-पास

1. भाषा और लिपि में क्या अंतर है ? इस विषय पर शिक्षक से चर्चा करें ।
2. देवनागरी लिपि की विशेषताओं के संबंध में जानकारी इकट्ठी करें और उसे बिन्दुवार पेश करें ।
3. केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा देवनागरी अक्षरों का मानक रूप निर्धारित किया गया है । उसे उपलब्ध करें और उसमें किये गये सुधारों को चिह्नित करें ।

भाषा की बात

1. **निम्नलिखित शब्दों से संज्ञा बनाएँ –**
   स्थिर, अतिरिक्त, स्मरणीय, दक्षिणी, आसान, पराक्रमी, युगीन
2. **निम्नलिखित पदों के समासविग्रह करें –**
   तमिल-मलयालम, राष्ट्रीय, विद्यानुराग, शिरोरेखा, हस्तलिपि, दोहाकोश, पहले-पहल

3. निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची लिखें –

मत, सार्वदेशिक, अनुकरण, व्यवहार, शासक

4. निम्नलिखित भिन्नार्थक शब्दों के अर्थ स्पष्ट करें –

(क) प्रत्न - प्रयत्न (ख) लिपि - लिप्ति (ग) नागरी - नागरिक (घ) पट - पट्ट

शब्द निधि :

लिपि	:	ध्वनियों के लिखित चिह्न
नागरी	:	नगर की, शहर की
अनुकरण	:	नकल
ब्राह्मी	:	एक प्राचीन भारतीय लिपि जिससे नागरी आदि लिपियों का विकास हुआ
पोथियाँ	:	पुस्तकें, ग्रंथ
टकसाल	:	जहाँ सिक्के ढलते हैं
रामसीय	:	राम-सीता
अस्तित्व	:	पहचान, सत्ता
हस्तलिपि	:	हाथ की लिखावट
आद्यलेख	:	अत्यंत प्राचीन प्रारंभिक लेख
विद्यानुराग	:	विद्या से प्रेम

❑❑❑

ABSDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

अमरकांत

हिन्दी के सशक्त कथाकार अमरकांत का जन्म जुलाई 1925 ई० में नागरा, बलिया (उत्तरप्रदेश) में हुआ था । उन्होंने गवर्नमेंट हाईस्कूल, बलिया से हाईस्कूल की शिक्षा पायी । कुछ समय तक उन्होंने गोरखपुर और इलाहाबाद में इंटरमीडिएट की पढ़ाई की, जो 1942 के स्वाधीनता संग्राम में शामिल होने से अधूरी रह गयी, और अंततः 1946 ई० में सतीशचंद्र कॉलेज बलिया से इंटरमीडिएट किया । उन्होंने 1947 ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० किया और 1948 ई० में आगरा के दैनिक पत्र 'सैनिक' के संपादकीय विभाग में नौकरी कर ली । आगरा में ही वे 'प्रगतिशील लेखक संघ' में शामिल हुए और वहीं से कहानी लेखन की शुरुआत की । बाद में वे दैनिक 'अमृत पत्रिका' इलाहाबाद, दैनिक 'भारत' इलाहाबाद, मासिक पत्रिका 'कहानी' इलाहाबाद तथा 'मनोरमा' इलाहाबाद के भी संपादकीय विभागों से सम्बद्ध रहे । अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में उनकी कहानी 'डिप्टी कलक्टरी' पुरस्कृत हुई थी । उन्हें कथा लेखन के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' भी प्राप्त हो चुका है ।

आजादी के बाद के हिंदी कथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण कथाकार अमरकांत की कहानियों में मध्यवर्ग, विशेषकर निम्न मध्यवर्ग के जीवनानुभवों और जिजीविषा का बेहद प्रभावशाली और अंतरंग चित्रण मिलता है । अक्सर सपाट नजर आनेवाले कथनों में भी वे अपने जीवंत मानवीय संस्पर्श के कारण अनोखी आभा पैदा कर देते हैं । अमरकांत के व्यक्तित्व की तरह उनकी भाषा में भी एक खास किस्म का फक्कड़पन है । लोकजीवन के मुहावरों और देशज शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा में एक ऐसी चमक पैदा हो जाती है जो पाठकों को निजी लोक में ले जाती है । अमरकांत के कई कहानी संग्रह और उपन्यास हैं । 'जिंदगी और जोंक', 'देश के लोग', 'मौत का नगर', 'मित्र-मिलन', 'कुहासा' आदि उनके कहानी संग्रह हैं और 'सूखा पत्ता', 'आकाशपक्षी', 'काले उजले दिन', 'सुखजीवी', 'बीच की दीवार', 'ग्राम सेविका' आदि उपन्यास हैं । उन्होंने 'वानर सेना' नामक एक बाल उपन्यास भी लिखा है ।

अमरकांत की प्रस्तुत कहानी में मँझोले शहर के नौकर की लालसा वाले एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में काम करनेवाले बहादुर की कहानी है – एक नेपाली गँवई गोरखे की । परिवार का नौकरी-पेशा मुखिया तटस्थ स्वर में बहादुर के आने और अपने स्वच्छंद निश्छल स्वभाव की आत्मीयता के साथ नौकर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के बाद एक दिन स्वभाव की उसी स्वच्छंदता के साथ हर हृदय में एक कसकती अंतर्व्यथा देकर चले जाने की कहानी कहता है । लेखक घर के भीतर और बाहर के यथार्थ को बिना बनाई-सँवारी सहज परिपक्व भाषा में पूरी कहानी बयान करता है । हिंदी कहानी में एक नये नायक को यह कहानी प्रतिष्ठित करती है ।

बहादुर

सहसा मैं काफी गंभीर हो गया था, जैसा कि उस व्यक्ति को हो जाना चाहिए, जिस पर एक भारी दायित्व आ गया हो । वह सामने खड़ा था और आँखों को बुरी तरह मलका रहा था। बारह-तेरह वर्ष की उम्र । ठिगना चकइठ शरीर, गोरा रंग और चपटा मुँह । वह सफेद नेकर, आधी बाँह की ही सफेद कमीज और भूरे रंग का पुराना जूता पहने था । उसके गले में स्काउटों की तरह एक रूमाल बँधा था । उसको घेरकर परिवार के अन्य लोग खड़े थे । निर्मला चमकती दृष्टि से कभी लड़के को देखती और कभी मुझको और अपने भाई को । निश्चय ही वह पंच-बराबर हो गई थी ।

उसको लेकर मेरे साले साहब आए थे । नौकर रखना कई कारणों से बहुत जरूरी हो गया था । मेरे सभी भाई और रिश्तेदार अच्छे ओहदों पर थे और उन सभी के यहाँ नौकर थे । मैं जब बहन की शादी में घर गया तो वहाँ नौकरों का सुख देखा । मेरी दोनों भाभियाँ रानी की तरह बैठकर चारपाइयाँ तोड़ती थीं, जबकि निर्मला को सबेरे से लेकर रात तक खटना पड़ता था । मैं ईर्ष्या से जल गया । इसके बाद नौकरी पर वापस आया तो निर्मला दोनों जून 'नौकर-चाकर' की माला जपने लगी । उसकी तरह अभागिन और दुखिया स्त्री और भी कोई इस दुनिया में होगी ? वे लोग दूसरे होते हैं, जिनके भाग्य में नौकर का सुख होता है.....।

पहले साले साहब से असाधारण विस्तार से उसका क़िस्सा सुनना पड़ा । वह एक नेपाली था, जिसका गाँव नेपाल और बिहार की सीमा पर था । उसका बाप युद्ध में मारा गया था और उसकी माँ सारे परिवार का भरण-पोषण करती थी । माँ उसकी बड़ी गुस्सैल थी और उसको बहुत मारती थी । माँ चाहती थी कि लड़का घर के काम-धाम में हाथ बटाये, जबकि वह पहाड़ या जंगलों में निकल जाता और पेड़ों पर चढ़कर चिड़ियों के घोंसलों में हाथ डालकर उनके बच्चे पकड़ता या फल तोड़-तोड़कर खाता । कभी-कभी वह पशुओं को चराने के लिए ले जाता था। उसने एक बार उस भैंस को बहुत मारा, जिसको उसकी माँ बहुत प्यार करती थी, और इसीलिए जिससे वह बहुत चिढ़ता था । मार खाकर भैंस भागी-भागी उसकी माँ के पास चली गई, जो कुछ दूरी पर एक खेत में काम कर रही थी । माँ का माथा ठनका । बेचारा बेजुबान जानवर चरना छोड़कर वहाँ क्यों आएगा ? जरूर लौंडे ने इसको काफी मारा है । वह गुस्से से पागल हो गई। जब लड़का आया तो माँ ने भैंस की मार का काल्पनिक अनुमान करके एक डंडे से उसकी दुगुनी पिटाई की और उसको वहीं कराहता हुआ छोड़कर घर लौट आई । लड़के का मन माँ से फट

गया और वह रात भर जंगल में छिपा रहा । जब सबेरा होने को आया तो वह घर पहुँचा और किसी तरह अन्दर चोरी-चुपके घुस गया । फिर उसने घी की हँडिया में हाथ डालकर माँ के रखे रुपयों में से दो रुपये निकाल लिए । अन्त में नौ-दो ग्यारह हो गया । वहाँ से छह मील की दूरी पर बस-स्टेशन था, वहाँ गोरखपुर आनेवाली बस थी ।

– तुम्हारा नाम क्या है जी ? – मैंने पूछा ।

– दिलबहादुर, सा'ब ।

उसके स्वर में एक मीठी झनझनाहट थी । मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि मैंने उसको क्या हिदायतें दीं । शायद यह कि वह शरारतें छोड़कर ढंग से काम करे और घर को अपना घर समझे। इस घर में नौकर-चाकर को बहुत प्यार और इज्जत से रखा जाता है । जो सब खाते-पहनते हैं, वही नौकर-चाकर खाते-पहनते हैं । अगर वह यहाँ रह गया तो ढंग-शऊर सीख जाएगा, घर के और लड़कों की तरह पढ़-लिख जाएगा और उसकी जिंदगी सुधर जाएगी । निर्मला ने उसी समय कुछ व्यावहारिक उपदेश दे डाले थे । इस मुहल्ले में बहुत तुच्छ लोग रहते हैं, वह न किसी के यहाँ जाए और न किसी का काम करे । कोई बाजार से कुछ लाने को कहे तो वह 'अभी आता हूँ' कहकर अन्दर खिसक जाए । उसको घर के सभी लोगों से सम्मान और तमीज से बोलना चाहिए । और भी बहुत-सी बातें । अन्त में निर्मला ने बहुत ही उदारतापूर्वक लड़के के नाम में से 'दिल' शब्द उड़ा दिया ।

परन्तु बहादुर बहुत हो हँसमुख और मेहनती निकला । उसकी वजह से कुछ दिनों तक हमारे घर में वैसा ही उत्साहपूर्ण वातावरण छाया रहा, जैसा कि प्रथम बार तोता-मैना या पिल्ला पालने पर होता है । सबेरे-सबेरे ही मुहल्ले के छोटे लड़के घर के अन्दर आकर खड़े हो जाते और उसको देखकर हँसते या तरह-तरह के प्रश्न करते । 'ए, तुम लोग छिपकली को क्या कहते हो ?' 'ए, तुमने शेर देखा है ?' ऐसी ही बातें । उससे पहाड़ी गाने की फरमाइशें की जातीं । घर के लोग भी उससे इसी प्रकार की छेड़खानियाँ करते थे । वह जितना उत्तर देता था उससे अधिक हँसता था । सबको उसके खाने और नाश्ते की बड़ी फिक्र रहती ।

निर्मला आँगन में खड़ी होकर पड़ोसियों को सुनाते हुए कहती थी – बहादुर, आकर नाश्ता क्यों नहीं कर लेते ? मैं दूसरी औरतों की तरह नहीं हूँ, जो नौकर-चाकर को जलाती-भुनती हैं। मैं तो नौकर-चाकर को अपने बच्चे की तरह रखती हूँ । उन्होंने तो साफ-साफ कह दिया है कि सौ-डेढ़ सौ महीनवारी उस पर भले ही खर्च हो जाए, पर तकलीफ उसको जरा भी नहीं होनी चाहिए । एक नेकर-कमीज तो उसी रोज लाए थे...और भी कपड़े बन रहे हैं....

धीरे-धीरे वह घर के सारे काम करने लगा । सबेरे ही उठकर वह बाहर नीम के पेड़ से दातुन तोड़ लाता था । वह हाथ का सहारा लिए बिना कुछ दूर तक तने पर दौड़ते हुए चढ़ जाता । मिनट भर में वह पेड़ की फुलई पर नजर आता । निर्मला छाती पीटकर कहती थी – अरे रीछ-बन्दर की जात, कहीं गिर गया तो बड़ा बुरा होगा । वह घर की सफाई करता, कमरों में पोंछा

लगाता, अँगीठी जलाता, चाय बनाता और पिलाता। दोपहर में कपड़े धोता और बर्तन मलता। वह रसोई बनाने की भी जिद करता, पर निर्मला स्वयं सब्जी और रोटी बनाती। निर्मला को उसकी बहुत फिक्र रहती थी। उसकी उन दिनों तबीयत ठीक नहीं रहती थी, इसलिए वह कुछ दवा ले रही थी। बहादुर उसको कोई काम करते देखकर कहता था – माता जी, मेहनत न करो, तकलीफ बढ़ जाएगा। वह कोई भी काम करता होता, समय होने पर हाथ धोकर भालू की तरह दौड़ता हुआ कमरे में जाता और दवाई का डिब्बा निर्मला के सामने लाकर रख देता।

जब मैं शाम को दफ्तर से आता, तो घर के सभी लोग मेरे पास आकर दिन भर के अपने अनुभव सुनाते थे। बाद में वह भी आता था। वह एक बार मेरी ओर देखकर सिर झुका लेता और धीरे-धीरे मुस्कराने लगता। वह कोई बहुत ही मामूली घटना की रिपोर्ट देता। –बाबूजी, बहिन जी का एक सहेली आया था। या बाबू जी, भैया सिनेमा गया था। इसके बाद वह इस तरह हँसने लगता था, गोया बहुत ही मजेदार बात कह दी हो। उसकी हँसी बड़ी कोमल और मीठी थी, जैसे फूल की पंखुड़ियाँ बिखर गई हों। मैं उससे बातचीत करना चाहता था, पर ऐसी इच्छा रहते हुए भी मैं जान-बूझकर बहुत गम्भीर हो जाता था और दूसरी ओर देखने लगता था।

निर्मला कभी-कभी उससे पूछती थी – बहादुर, तुमको अपनी माँ की याद आती है ?

– नहीं।

– क्यों ?

– वह मारता क्यों था ? –इतना कहकर वह खूब हँसता था, जैसे मार खाना खुशी की बात हो।

– तब तुम अपना पैसा माँ के पास कैसे भेजने को कहते हो ?

– माँ-बाप का कर्जा तो जन्म भर भरा जाता है – वह और भी हँसता था।

निर्मला ने उसको एक फटी-पुरानी दरी दे दी थी। घर से वह एक चादर भी ले आया था। रात को काम-धाम करने के बाद वह भीतर के बरामदे में एक टूटी हुई बँसखट पर अपना बिस्तर बिछाता था। वह बिस्तरे पर बैठ जाता और अपनी जेब में से कपड़े की एक गोल-सी नेपाली टोपी निकालकर पहन लेता, जो बाईं ओर काफी झुकी रहती थी। फिर वह एक छोटा-सा आईना निकालकर बन्दर की तरह उसमें अपना मुँह देखता था। वह बहुत ही प्रसन्न नजर आता था। इसके बाद कुछ और भी चीजें उसकी जेब से निकलकर उसके बिस्तरे पर सज जातीं थीं – कुछ गोलियाँ, पुराने ताश की एक गड्डी, कुछ खूबसूरत पत्थर के टुकड़े, ब्लेड, कागज की नावें। वह कुछ देर तक उनसे खेलता था। उसके बाद वह धीमे-धीमे स्वर में गुनगुनाने लगता था। उन पहाड़ी गानों का अर्थ हम समझ नहीं पाते थे, पर उसकी मीठी उदासी सारे घर में फैल जाती, जैसे कोई पहाड़ की निर्जनता में अपने किसी बिछुड़े हुए साथी को बुला रहा हो।

X X X

दिन मजे में बीतने लगे। बरसात आ गई थी। पानी रुकता था और बरसता था। मैं अपने

को बहुत ऊँचा महसूस करने लगा था । अपने परिवार और सम्बन्धियों के बड़प्पन तथा शान-बान पर मुझे सदा गर्व रहा है । अब मैं मुहल्ले के लोगों को पहले से भी तुच्छ समझने लगा । मैं किसी से सीधे मुँह बात नहीं करता । किसी की ओर ठीक से देखता भी नहीं था । दूसरे के बच्चों को मामूली-सी शरारत पर डाँट-डपट देता । कई बार पड़ोसियों को सुना चुका था – जिसके पास कलेजा है, वही आजकल नौकर रख सकता है । घर के सदस्य की तरह रहता है । निर्मला भी सारे मुहल्ले में शुभ सूचना दे आई थी – आधी तनख्वाह तो नौकर पर ही खर्च हो रही है, पर रुपया-पैसा कमाया किसलिए जाता है ? वे तो कई बार कह ही चुके थे कि तुम्हारे लिए दुनिया के किसी कोने से नौकर जरूर लाऊँगा....वही हुआ ।

निस्संदेह बहादुर की वजह से सबको खूब आराम मिल रहा था । घर खूब साफ और चिकना रहता । कपड़े चमाचम सफेद । निर्मला की तबीयत भी काफी सुधर गई । अब कोई एक खर भी न टसकाता था । किसी को मामूली-से-मामूली काम करना होता, तो वह बहादुर को आवाज देता । 'बहादुर, एक गिलास पानी ।' 'बहादुर, पेन्सिल नीचे गिरी है, उठाना ।' इसी तरह की फरमाइशें । बहादुर घर में फिरकी की तरह नाचता रहता । सभी रात में पहले ही सो जाते थे और सबेरे, आठ बजे के पहले न उठते थे ।

मेरा बड़ा लड़का किशोर काफी शान शौकत और रौब-दाब से रहने का कायल था और उसने बहादुर को अपने कड़े अनुशासन में रखने की आवश्यकता महसूस कर ली थी । फलतः उसने अपने सभी काम बहादुर को सौंप दिए । सबेरे उसके जूते में पॉलिश लगनी चाहिए । कॉलेज जाने के ठीक पहले साइकिल की सफाई जरूरी थी । रोज ही उसके कपड़ों की धुलाई और इस्त्री होनी चाहिए । और रात में सोते समय वह नित्य बहादुर से अपने शरीर की मालिश कराता और मुक्की भी लगवाता । पर इतनी सारी फरमाइशों की पूर्ति में कभी-कभी कोई गड़बड़ी भी हो जाती । जब ऐसा होता, किशोर गर्जन-तर्जन करने लगता, उसको बुरी-बुरी गालियाँ देता और उस पर हाथ छोड़ देता । मार खाकर बहादुर एक कोने में खड़ा हो जाता – चुपचाप ।

– देख-बे – किशोर चेतावनी देता – मेरा काम सबसे पहले होना चाहिए । अगर एक काम भी छूटा तो मारते-मारते हुलिया टाइट कर दूँगा । साला, कामचोर, करता क्या है तू ? बैठा-बैठा खाता है ।

रोज ही, कोई-न-कोई ऐसी बात होने लगी, जिसकी रिपोर्ट पत्नी मुझे देती थी । मैंने किशोर को मना किया, पर वह नहीं माना तो मैंने यह सोचकर छोड़ दिया कि थोड़ा बहुत तो यह चलता ही रहता है । फिर एक हाथ से ताली कहाँ बजती है ? बहादुर भी बदमाशी करता होगा । पर एक दिन जब मैं दफ्तर से आया तो मैंने किशोर को एक डंडे से बहादुर की पिटाई करते हुए देखा । निर्मला कुछ दूरी पर खड़ी होकर हाँ-हाँ करती हुई मना कर रही थी ।

मैंने किशोर को डाँट कर अलग किया । कारण यह था कि शाम को साइकिल की सफाई करना बहादुर भूल गया था । किशोर ने उसको मारा तथा गालियाँ दीं तो उसने उसका काम करने

से ही इनकार कर दिया ।

•तुम साइकिल साफ क्यों नहीं करते ?– मैंने उससे कड़ाई से पूछा ।

–बाबू जी, भैया ने मेरे बाप को क्यों लाकर खड़ा किया ? – वह रोते हुए बोला ।

मैं जानता था कि किशोर उसको और भी भद्दी गालियाँ देता था, लेकिन आज उसने 'सूअर का बच्चा' कहा था, जो उसे बरदाश्त न हुआ । निस्संदेह वह गाली उसके बाप पर पड़ती थी । मुझे कुछ हँसी आ गई । खैर, किशोर के व्यवहार को अच्छा नहीं कहा जा सकता था, पर गृहस्वामी होने के कारण मुझ पर कुछ और गम्भीर दायित्व भी थे ।

मैंने उसे समझाया – बहादुर, ये आदतें ठीक नहीं । तुम ठीक से काम करोगे तो तुमको कोई कुछ भी नहीं कहेगा । मेहनत बहुत अच्छी चीज है, जो उससे बचने की कोशिश करता है, वह कुछ भी नहीं कर सकता । रूठना-फूलना मुझे सख्त नापसंद है । तुम तो घर के लड़के की तरह हो । घर के लड़के मार नहीं खाते ? हम तुमको जिस सुख-आराम से रखते हैं, वह कोई क्या रखेगा ? जाकर दूसरे घरों में देखो तो पता लगे । नौकर-चाकर भरपेट भोजन के लिए तरसते रहते हैं । चलो, सब खत्म हुआ, अब काम करो....

वह चुपचाप सुनता रहा । फिर हाथ-मुँह धोकर काम करने लगा । जल्दी वह प्रसन्न भी हो गया । रात में सोते समय वह अपनी टोपी पहनकर देर तक गाता रहा ।

लेकिन कुछ दिनों बाद एक और भी गड़बड़ी शुरू हुई । निर्मला बहुत पतली-पतली रोटियाँ सेंकती थी, इसलिए वह रोटी बनाने का काम कभी भी बहादुर से नहीं लेती थी । लेकिन मुहल्ले की किसी औरत ने उसे यह सिखा दिया कि परिवार के लिए रोटियाँ बनाने के बाद वह बहादुर से कहे कि वह अपनी रोटी खुद बना लिया करे, नहीं तो नौकर-चाकर की आदतें खराब हो जाती हैं, महीन खाने से उनकी आदत बिगड़ जाती है ।

यह बात निर्मला को जँच गई थी और रात में उसने ऐसा ही प्रयोग किया । वह अपनी रोटियाँ बनाकर चौके में से उठ गई । बहादुर का मुँह उतर गया । वह चूल्हे के पास सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा रहा ।

ABDUL SOLUTIONS ABSOL PATNA

–क्या हो गया, रे ? –निर्मला ने पूछा ।

वह कुछ नहीं बोला ।

–चल, चुपचाप बना अपनी रोटियाँ । तू सोचता है कि मैं तुझे पतली-पतली, नरम-नरम रोटियाँ सेंककर खिलाऊँगी ? तू कोई घर का लड़का है ? नौकर-चाकर तो अपना बनाकर खाते ही रहते हैं । तीता तो इनको इसलिए लग रहा है कि सारे घर के लिए मैंने रोटियाँ बनाईं, इनको अलग करके इनके साथ भेद क्यों किया ? वाह रे, इसके पेट में तो लम्बी दाढ़ी है । समझ जा, रोटियाँ नहीं सेंकेगा तो भूखा रहेगा ।

पर बहादुर उसी तरह खड़ा रहा तो निर्मला का गुस्से से बुरा हाल हो गया । उसने लपककर उसके माथे पर दो-तीन थप्पड़ जड़ दिए – सूअर कहीं के ! इसीलिए तुझे किशोर मारता

है । इसी वजह से तेरी माँ भी मारती होगी । चल, बना रोटी.....

मैं नहीं बनाऊँगा.....मेरी माँ भी सारे घर की रोटियाँ बनाकर मुझसे रोटी सेंकवाती थी – वह रोने लगा था ।

–तो क्या मैं तेरी माँ हूँ कि तू मुझसे जिद कर रहा है ? घर के लड़कों के बराबर बन रहा है ? मारते-मारते मुँह रँग दूँगी ।

पर उसने अपने लिए रोटी नहीं बनाई । मुझे भी बड़ा गुस्सा आया । मैंने उसको डाँटा और समझाया । पर वह नहीं माना । रात भर वह भूखा ही रहा ।

पर सबेरे उठकर वह पहले की तरह ही हँसने लगा । उसने अँगीठी जला कर अपने लिए रोटियाँ सेंकीं । अपनी बनाई मोटी और भद्दी रोटियों को देखकर वह खिलखिलाने लगा । फिर रात की बची हुई सब्जी से उसने खाना खा लिया ।

लेकिन निर्मला का भी हाथ खुल गया था । वह उससे कुछ चिढ़ भी गई थी । अब बहादुर से कोई भी गलती होती तो वह उस पर हाथ चला देती । उसको मारनेवाले अब घर में दो व्यक्ति हो गए थे और कभी-कभी एक गलती के लिए उसको दोनों मारते ।

बरसात बीत गई थी । आकाश दर्पण की तरह स्वच्छ दिखलाई देता । मैंने बहादुर की माँ के पास चिट्ठी लिखी थी कि उसका लड़का मेरे पास मजे में है और मैं उसकी तनख्वाह के पैसे उसके पास भेज दिया करूँगा, लेकिन कई महीनों के बाद भी उधर से कोई जवाब नहीं आया था । मैंने बहादुर से कह दिया था कि उसका पैसा यहाँ जमा रहेगा, जब वह घर जाएगा तो लेता जाएगा ।

पर अब बहादुर से भूल-गलतियाँ अधिक होने लगी थीं । शायद इसका कारण मार-पीट और गाली-गलौज हो । मैं कभी-कभी इसको रोकना चाहता, फिर यह सोचकर चुप लगा जाता कि नौकर-चाकर तो मार-पीट खाते ही रहते हैं ।

एक दिन रविवार को मेरी पत्नी के एक रिश्तेदार आए । वह बीबी-बच्चों के साथ थे। वह अपने किसी खास संबंधी के यहाँ आए थे, तो यहाँ भी भेंट-मुलाकात करने के लिए चले आए थे । घर में बड़ी चहल-पहल मच गई । मैं बाजार से रोहू मछली और देहरादूनी चावल ले आया। नाश्ता-पानी के बाद बातों की जलेबी छनने लगी । पर इसी समय एक घटना हो गई ।

अचानक उस रिश्तेदार की पत्नी नीचे फर्श पर झुककर देखने लगीं । फिर उन्होंने चारपाई के अन्दर झाँककर देखा । अन्त में कमरे के अन्दर गईं और फर्श पर पड़े हुए कागजों को उठाकर जाँच-पड़ताल करने लगीं ।

–क्या बात है ? –मैंने पूछा ।

रिश्तेदार की पत्नी जबरदस्ती मुस्कराकर मजबूरी में सिर हिलाते हुए बोलीं – क्या बताएँ, ...ग्यारह रुपए साड़ी के खूँट से निकालकर यहीं चारपाई पर रखे....पर वे मिल नहीं रहे हैं....

– आपको ठीक याद है न...

— हाँ-हाँ — खूब अच्छी तरह याद है। ये रुपए मैंने खूँट में बाँधकर रखे थे...रिक्शेवाले को देने के लिए खूँट खोला ही था, फिर वे रुपए चारपाई पर रख दिए थे कि चार रुपए की मिठाई मँगा लूँगी और कुछ बच्चों के हाथ पर रख दूँगी। रास्ते में कोई ढंग की दुकान नहीं मिली थी, नहीं तो उधर से ही लाती। किसी के यहाँ खाली हाथ जाने में अच्छा भी नहीं लगता। बताइए, अब तो मैं कहीं की न रही। — फिर मेरी ओर झुक कर धीमे स्वर में कहा था— जरा उससे पूछिए न! वह इधर आया था! कुछ देर तक नहीं खड़ा रहा, फिर तेजी से बाहर चला गया था।

—अरे नहीं, वह ऐसा नहीं है—मैंने कहा।

— यू डू नॉट नो–दीज पीपुल आर एक्सपर्ट इन दिस आर्ट'—रिश्तेदार ने कहा।

मैंने बहादुर की ओर तिरछी दृष्टि से देखा। वह सिर झुकाकर आटा गूँथ रहा था। उसके चेहरे पर संतुष्टि एवं प्रफुल्लता थी। उसने ऐसा काम तो कभी नहीं किया, बल्कि जब कभी उसने दो-चार आने इधर-उधर पड़े देखे तो उठाकर निर्मला के हाथ में दे दिए थे। पर किसी के दिल की बात कोई कैसे जान सकता है? न मालूम अचानक मुझे क्या हो गया और मैं गुस्से में आ गया।

—बहादुर! —मैंने कड़े स्वर में कहा।

—जी, बाबू जी।

—इधर आओ।

—वह आकर खड़ा हो गया।

—तुमने यहाँ से रुपए उठाए थे?

—जी नहीं बाबूजी! —उसने निर्भय उत्तर दिया।

—ठीक बताओ...मैं बुरा नहीं मानूँगा।

—नहीं बाबूजी। मैं लेता, तो बता देता।

—तुम यहाँ खड़े नहीं थे? —रिश्तेदार की पत्नी ने कहा —फिर तेजी से बाहर चले गए। देखो भैया, सच-सच बता दो। मिठाई खरीदने और बच्चों को देने के लिए ये रुपए रखे थे। मैं तो बुरी फँसी। अब वापस जाने के लिए रिक्शे के भी पैसे नहीं।

—मैं तो बाहर नमक लेने गया था।

—सच-सच बता बहादुर! अगर नहीं बताएगा तो बहुत पीटूँगा और पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। —मैं चिल्ला पड़ा।

मैंने नहीं लिया, बाबूजी। —बहादुर का मुँह काला पड़ गया था।

पता नहीं मुझे क्या हो गया। मैंने सहसा उछलकर उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। मैं आशा कर रहा था कि ऐसा करने से वह बता देगा। तमाचा खाकर वह गिरते-गिरते बचा। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

—मैंने नहीं लिया...

इसी समय रिश्तेदार साहब ने एक अजीब हरकत की – अच्छा छोड़िए, इसको पुलिस के पास ले जाता हूँ । –इतना कहकर उन्होंने बहादुर का हाथ पकड़ लिया और उसको दरवाजे की ओर घसीटकर ले गए । पर दरवाजे के पास उससे धीरे से बोले – देखो, तुम मुझे बता दो....मैं कुछ नहीं करूँगा, बल्कि तुमको इनाम में दो रुपए दे दूँगा ।

पर बहादुर ने इनकार कर दिया । इसके बाद रिश्तेदार साहब दो-तीन बार उसको दरवाजे की ओर खींचकर ले गए, जैसे पुलिस को देने ही जा रहे हैं । लेकिन आगे बढ़कर वह रुक जाते और उससे धीमे-धीमे शब्दों में पूछ-ताछ करने लगते ।

अन्त में हारकर उन्होंने उसको छोड़ दिया और वापस आकर चारपाई पर बैठते हुए हँसकर बोले – जाने दीजिए....ये सब बड़े घाघ होते हैं । किसी झाड़ी-वाड़ी में छिपा आया होगा या जमीन में गाड़ आया होगा । मैं तो इन सबों को खूब जानता हूँ । भालू-बन्दर से कम थोड़े होते हैं ये । चलिए, इतना नुकसान लिखा था ।

इसके बाद निर्मला ने भी उसको डराया-धमकाया और दो-चार तमाचे जड़ दिए, पर वह 'नहीं-नहीं' करता रहा ।

इस घटना के बाद बहादुर काफी डाँट-मार खाने लगा । घर के सभी लोग उसको कुत्ते की तरह दुरदुराया करते । किशोर तो जैसे उसकी जान के पीछे पड़ गया था । वह उदास रहने लगा और काम में लापरवाही करने लगा ।

एक दिन मैं दफ्तर से विलम्ब से आया । निर्मला आँगन में चुपचाप सिर पर हाथ रखकर बैठी थी । अन्य लड़कों का पता नहीं था, केवल लड़की अपनी माँ के पास खड़ी थी । अँगीठी अभी नहीं जली थी । आँगन गंदा पड़ा था, बर्तन बिना मले हुए रखे थे । सारा घर जैसे काट रहा था ।

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

–क्या बात है ? –मैंने पूछा ।

–बहादुर भाग गया ।

–भाग गया ! क्यों ?

–पता नहीं । आज तो कुछ हुआ भी नहीं था । सबेरे से ही बड़ा प्रसन्न था । हमेशा 'माताजी माताजी' किए रहा । दोपहर में खाना खाया । उसके बाद आँगन से सिल-बट्टा लेकर बरामदे में रखने जा रहा था कि सिल हाथ से छूटकर गिर गई और दो टुकड़े हो गई । शायद इसी डर से वह भाग गया कि लोग मारेंगे । पर मैं इसके लिए उसको थोड़े कुछ कहती ? क्या बताऊँ मेरी किस्मत में आराम ही नहीं....

–कुछ ले गया ?

–यही तो अफसोस है । कोई भी सामान नहीं ले गया है । उसके कपड़े, उसका बिस्तरा, उसके जूते – सभी छोड़ गया है । पता नहीं उसने हमें क्या समझा ? अगर वह कहता तो मैं उसे रोकती थोड़े ? बल्कि उसको खूब अच्छी तरह पहना-ओढ़ाकर भेजती, हाथ में उसकी तनख्वाह

के रुपए रख देती । दो चार रुपए और अधिक दे देती । पर वह तो कुछ ले ही नहीं गया....

—और वे ग्यारह रुपए ?

—अरे वह सब झूठ है । मैं तो पहले ही जानती थी कि वे लोग बच्चों को कुछ देना नहीं चाहते इसलिए अपनी गलती और लाज छिपाने के लिए यह प्रपंच रच रहे हैं । उन लोगों को क्या मैं जानती नहीं ? कभी उनके रुपए रास्ते में गुम हो जाते हैं, कभी वे गलती से घर ही पर छोड़ आते हैं । मेरे कलेजे में तो जैसे कुछ कौंध रहा है । किशोर को भी बड़ा अफसोस है । उसने सारा शहर छान मारा, पर बहादुर नहीं मिला । किशोर आकर कहने लगा – अम्मा, एक बार भी अगर बहादुर आ जाता तो मैं उसको पकड़ लेता और कभी जाने न देता । उससे माफी माँग लेता और कभी नहीं मारता । सच, अब ऐसा नौकर कभी नहीं मिलेगा । कितना आराम दे गया है वह । अगर वह कुछ चुराकर ले गया होता तो संतोष हो जाता ।

निर्मला आँखों पर आँचल रखकर रोने लगी । मुझे बड़ा क्रोध आया । मैं चिल्लाना चाहता था, पर भीतर-ही-भीतर कलेजा जैसे बैठ रहा हो । मैं वहीं चारपाई पर सिर झुकाकर बैठ गया । मुझे एक अजीब-सी लघुता का अनुभव हो रहा था । यदि मैं न मारता, तो शायद वह न जाता ।

मैंने आँगन में नजर दौड़ाई । एक ओर स्टूल पर उसका बिस्तरा रखा था । अलगनी पर उसके कुछ कपड़े टँगे थे । स्टूल के नीचे वह भूरा जूता था, जो मेरे साले साहब के लड़के का था । मैं उठकर अलगनी के पास गया और उसके नेकर की जेब में हाथ डालकर उसके सामान निकालने लगा – वही गोलियाँ, पुराने ताश की गड्डी, खूबसूरत पत्थर, ब्लेड, कागज की नावें...

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. लेखक को क्यों लगता है कि जैसे उस पर एक भारी दायित्व आ गया हो ?
2. अपने शब्दों में पहली बार दिखे बहादुर का वर्णन कीजिए ।
3. लेखक को क्यों लगता है कि नौकर रखना बहुत जरूरी हो गया था ?
4. साले साहब से लेखक को कौन-सा किस्सा असाधारण विस्तार से सुनना पड़ा ?
5. बहादुर अपने घर से क्यों भाग गया था ?
6. बहादुर के नाम से 'दिल' शब्द क्यों उड़ा दिया गया ? विचार करें ।
7. व्याख्या करें -
   (क) उसकी हँसी बड़ी कोमल और मीठी थी, जैसे फूल की पंखुड़ियाँ बिखर गई हों ।
   (ख) पर अब बहादुर से भूल-गलतियाँ अधिक होने लगी थीं ।
   (ग) अगर वह कुछ चुराकर ले गया होता तो संतोष हो जाता ।
   (घ) यदि मैं न मारता, तो शायद वह न जाता ।
8. काम-धाम के बाद रात को अपने बिस्तर पर गये बहादुर का लेखक किन शब्दों में चित्रण करता है ? चित्र का आशय स्पष्ट करें ।
9. बहादुर के आने से लेखक के घर और परिवार के सदस्यों पर कैसा प्रभाव पड़ा ?
10. किन कारणों से बहादुर ने एक दिन लेखक का घर छोड़ दिया ?
11. बहादुर पर ही चोरी का आरोप क्यों लगाया जाता है और उस पर इस आरोप का क्या असर पड़ता है ?
12. घर आए रिश्तेदारों ने कैसा प्रपंच रचा और उसका क्या परिणाम निकला ?
13. बहादुर के चले जाने पर सबको पछतावा क्यों होता है ?
14. बहादुर, किशोर, निर्मला और कथावाचक का चरित्र चित्रण करें ।
15. निर्मला को बहादुर के चले जाने पर किस बात का अफसोस हुआ ?
16. कहानी छोटा मुँह बड़ी बात कहती है । इस दृष्टि से 'बहादुर' कहानी पर विचार करें ।
17. कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए । लेखक ने इसका शीर्षक 'नौकर' क्यों नहीं रखा ?
18. कहानी का सारांश प्रस्तुत करें ।

पाठ के आस-पास

1. 'दोपहर का भोजन', 'जिंदगी और जोंक', 'डिप्टी कलक्टरी', 'हत्यारे' जैसी अमरकांत की कहानियाँ पुस्तकालय से उपलब्ध कर पढ़ें और मित्रों से चर्चा करें ।

2. अमरकांत के समकालीन प्रमुख कहानीकारों के बारे में अपने शिक्षक से जानकारी प्राप्त करें ।
3. अमरकांत का 'वानर सेना' नामक बाल उपन्यास खोजकर पढ़ें ।
4. आपको पता है कि बच्चों से नौकर का काम लेना अब कानूनन जुर्म है । यह कानून कब बना और इसमें क्या-क्या प्रावधान रखे गए हैं ? मालूम करें ।

भाषा की बात

1. **निम्नलिखित मुहावरों का वाक्य में प्रयोग करते हुए अर्थ स्पष्ट करें –**
मारते-मारते मुँह रँग देना, हुलिया टाइट करना, हाथ खुलना, मजे में होना, बातों की जलेबी छनना, कहीं का न रहना, नौ-दो ग्यारह होना, खाली हाथ जाना, बुरे फँसना, पेट में लंबी दाढ़ी, चहल-पहल मचना
2. **निम्नलिखित शब्दों का वाक्य में प्रयोग करते हुए लिंग-निर्देश करें –**
रूमाल, ओहदा, भरण-पोषण, इज्जत, झनझनाहट, फरमाइश, छेड़खानी, पुलई, फिक्र, चादर
3. **निम्नलिखित वाक्यों की बनावट बदलें –**
(क) सहसा मैं काफी गंभीर हो गया था, जैसा कि उस व्यक्ति को हो जाना चाहिए, जिस पर एक भारी दायित्व आ गया हो ।
(ख) माँ उसकी बड़ी गुस्सैल थी और उसको बहुत मारती थी ।
(ग) मार खाकर भैंस भागी-भागी उसकी माँ के पास चली गई, जो कुछ दूरी पर एक खेत में काम कर रही थी ।
(घ) मैं उससे बातचीत करना चाहता था, पर ऐसी इच्छा रहते हुए भी मैं जानबूझकर गंभीर हो जाता था और दूसरी ओर देखने लगता था ।
(ङ) निर्मला कभी-कभी उससे पूछती थी – बहादुर, तुमको अपनी माँ की याद आती है ?
4. **अर्थ की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों के प्रकार बताएँ –**
(क) वह मारता क्यों था ?
(ख) वह कुछ देर तक उनसे खेलता था ।
(ग) दिन मजे में बीतने लगे ।
(घ) इसी तरह की फरमाइशें ।
(ङ) – देख–बे मेरा काम सबसे पहले होना चाहिए ।
(च) रास्ते में कोई ढंग की दुकान नहीं मिली थी, नहीं तो उधर से ही लाती ।

शब्द निधि :

पंच-बराबर : दो पक्षों के बीच निर्णायक की तरह होना, पंच की तरह
ओहदा : पद
जून : वक्त
बेजुबान : मूक, भाषाविहीन
हिदायत : चेतावनी, सावधानी
शरारत : चंचलता, बदमाशी
शऊर : ढंग, शिष्टाचार, सलीका

तुच्छ	:	नगण्य, क्षुद्र
फरमाइश	:	आग्रह, निवेदन
नेकर	:	पैंट
पुलई	:	पेड़ की सबसे ऊँची शाखा
सवांग	:	सगा, परिवार का सदस्य
फिरकी	:	नाचने वाली घिरनी
कायल	:	आकांक्षी, अभ्यस्त, आदी
दायित्व	:	जिम्मेदारी
दर्पण	:	आईना
खूँट	:	साड़ी के आँचल से बँधी हुई गाँठ
घाघ	:	घुँटा हुआ, चतुर
हौंड़ना	:	मँथना, मँथाना
अलगनी	:	कपड़े डालने के लिए बँधी लंबी रस्सी, खूँटी

❑❑❑

रामविलास शर्मा

हिन्दी आलोचना के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर डॉ० रामविलास शर्मा का जन्म उन्नाव (उ० प्र०) के एक छोटे-से गाँव ऊँचगाँव सानी में 10 अक्टूबर 1912 ई० में हुआ था । उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से 1932 ई० में बी० ए० तथा 1934 ई० में अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया । एम० ए० करने के बाद 1938 ई० तक शोधकार्य में व्यस्त रहे । 1938 से 1943 ई० तक उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन कार्य किया । उसके बाद वे आगरा के बलवंत राजपूत कॉलेज चले आए और 1971 ई० तक यहाँ अध्यापन कार्य करते रहे । बाद में आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति के अनुरोध पर वे के० एम० हिंदी संस्थान के निदेशक बने और यहीं से 1974 ई० में सेवानिवृत्त हुए । 1949 से 1953 ई० तक रामविलास जी भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री भी रहे । उनका निधन 30 मई 2000 ई० को दिल्ली में हुआ ।

हिंदी गद्य को रामविलास शर्मा का योगदान ऐतिहासिक है । तर्क और तथ्यों से भरी हुई साफ पारदर्शी भाषा रामविलास जी के गद्य की विशेषता है । उन्हें भाषाविज्ञान विषयक परंपरागत दृष्टि को मार्क्सवाद की वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करने तथा हिंदी आलोचना को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है । देशभक्ति और मार्क्सवादी चेतना रामविलास जी का केंद्र-बिंदु है । उनकी लेखनी से वाल्मीकि और कालिदास से लेकर मुक्तिबोध तक की रचनाओं का मूल्यांकन प्रगतिवादी चेतना के आधार पर हुआ है । उन्हें न केवल प्रगति विरोधी हिंदी आलोचना की कला एवं साहित्य विषयक भ्रांतियों के निवारण का श्रेय है, बल्कि स्वयं प्रगतिवादी आलोचना द्वारा उत्पन्न अंतर्विरोधों के उन्मूलन का गौरव भी प्राप्त है ।

रामविलास जी ने हिंदी में जीवनी साहित्य को एक नया आयाम दिया । उन्हें 'निराला की साहित्य साधना' पुस्तक पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है । उनकी अन्य प्रमुख रचनाओं के नाम हैं – 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र', 'प्रेमचंद और उनका युग', 'भाषा और समाज', 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण', 'भारत की भाषा समस्या', 'नयी कविता और अस्तित्ववाद', 'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद', 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी', 'विराम चिह्न', 'बड़े भाई' आदि ।

पाठ के रूप में यहाँ रामविलास जी का निबंध प्रस्तुत है – 'परंपरा का मूल्यांकन' । यह निबंध इसी नाम की पुस्तक से किंचित संपादन के साथ संकलित है । यह निबंध समाज, साहित्य और परंपरा के पारस्परिक संबंधों की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक मीमांसा एकसाथ करते हुए रूपाकार ग्रहण करता है । परंपरा के ज्ञान, समझ और मूल्यांकन का विवेक जगाता यह निबंध साहित्य की सामाजिक विकास में क्रांतिकारी भूमिका को भी स्पष्ट करता चलता है । नई पीढ़ी में यह निबंध परंपरा और आधुनिकता की युगानुकूल नई समझ विकसित करने में एक सार्थक हस्तक्षेप करता है ।

परम्परा का मूल्यांकन

जो लोग साहित्य में युग-परिवर्तन करना चाहते हैं, जो लकीर के फकीर नहीं हैं, जो रूढ़ियाँ तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परम्परा का ज्ञान सबसे ज्यादा आवश्यक है । जो लोग समाज में बुनियादी परिवर्तन करके वर्गहीन शोषणमुक्त समाज की रचना करना चाहते हैं; वे अपने सिद्धान्तों को ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से पुकारते हैं । जो महत्त्व ऐतिहासिक भौतिकवाद के लिए इतिहास का है, वही आलोचना के लिए साहित्य की परम्परा का है । साहित्य की परम्परा के ज्ञान से ही प्रगतिशील आलोचना का विकास होता है । प्रगतिशील आलोचना के ज्ञान से साहित्य की धारा मोड़ी जा सकती है और नए प्रगतिशील साहित्य का निर्माण किया जा सकता है । प्रगतिशील आलोचना किन्हीं अमूर्त सिद्धान्तों का संकलन नहीं है, वह साहित्य की परम्परा का मूर्त ज्ञान है । और यह ज्ञान उतना ही विकासमान है जितना साहित्य की परम्परा ।

साहित्य की परम्परा का मूल्यांकन करते हुए सबसे पहले हम उस साहित्य का मूल्य निर्धारित करते हैं जो शोषक वर्गों के विरुद्ध श्रमिक जनता के हितों को प्रतिबिम्बित करता है । इसके साथ हम उस साहित्य पर ध्यान देते हैं जिसकी रचना का आधार शोषित जनता का श्रम है, और यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि वह वर्तमान काल में जनता के लिए कहाँ तक उपयोगी है और उसका उपयोग किस तरह हो सकता है । इसके अलावा जो साहित्य सीधे सम्पत्तिशाली वर्गों की देख-रेख में रचा गया है और उनके वर्गहितों को प्रतिबिम्बित करता है, उसे भी परखकर देखना चाहिए कि यह अभ्युदयशील वर्ग का साहित्य है या ह्रासमान वर्ग का । यह स्मरण रखना चाहिए कि पुराने समाज में वर्गों की रूपरेखा कभी बहुत स्पष्ट नहीं रही । जहाँ पूँजीवाद का यथेष्ट विकास हो गया है, वहीं यह सम्भावना होती है कि सम्पत्तिशाली और सम्पत्तिहीन वर्ग एक-दूसरे के सामने पूरी तरह विरोधी बनकर खड़े हों । पुराने साहित्य में वर्ग-हित साफ-साफ टकराते हुए दिखाई दें, इसकी सम्भावना कम होती है । सभ्यता के अनेक तत्त्वों की तरह साहित्य में भी ऐसे तत्त्व होते हैं जो विरोधी वर्गों के काम में आते हैं । आग जलाकर खाना पकाना मानव सभ्यता का सामान्य तत्त्व बन गया है । कल-कारखानों में भाप और बिजली से चलनेवाली मशीनों का उपयोग समाजवादी व्यवस्था में होता है और पूँजीवादी व्यवस्था में भी । सभ्यता का हर स्तर वर्गयुद्ध नहीं होता । इसी तरह साहित्य का हर स्तर सम्पत्तिशाली वर्गों के हितों से बँधा हुआ नहीं रहता । साहित्य की इस व्यापकता को स्वीकार न करना वैसे ही है जैसे समाजवादी व्यवस्था में बिजली

का उपयोग न करता क्योंकि इसका आविष्कार पूँजीवादी समाज में हुआ था और उसका उपयोग भी पूँजीपतियों ने अपने हित में किया था ।

साहित्य मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से संबद्ध है । आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप में भी अपना जीवन बिताता है । साहित्य में उसकी बहुत सी आदिम भावनाएँ प्रतिफलित होती हैं जो उसे प्राणिमात्र से जोड़ती हैं । इस बात को बार-बार कहने में कोई हानि नहीं है कि साहित्य विचारधारा मात्र नहीं है । उसमें मनुष्य का इन्द्रिय-बोध, उसकी भावनाएँ भी व्यंजित होती हैं । साहित्य का यह पक्ष अपेक्षाकृत स्थायी होता है ।

साहित्य में विकास-प्रक्रिया उसी तरह सम्पन्न नहीं होती जैसे समाज में । सामाजिक विकास-क्रम में सामन्ती सभ्यता की अपेक्षा पूँजीवादी सभ्यता को अधिक प्रगतिशील कहा जा सकता है और पूँजीवादी सभ्यता के मुकाबले समाजवादी सभ्यता को । पुराने चरखे और करघे के मुकाबले मशीनों के व्यवहार से श्रम की उत्पादकता बहुत बढ़ गई है । पर यह आवश्यक नहीं है कि सामन्ती समाज के कवि की अपेक्षा पूँजीवादी समाज का कवि श्रेष्ठ हो । यह भी सम्भव है कि आधुनिक सभ्यता का विकास कविता के विकास का विरोधी हो और कवि स्वयं बिकाऊ माल बन रहा हो । व्यवहार में यही देखा जाता है कि 19वीं और 20वीं सदी के कवि -- क्या भारत में क्या यूरूप में -- पुराने कवियों को पीछे छोड़ रहे हैं और कहीं उनके आस-पास पहुँच जाते हैं तो अपने को धन्य मानते हैं । वे जो तमाम कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का मनन करते हैं, वे उनका अनुकरण नहीं करते, उनसे सीखते हैं, और स्वयं नई परम्पराओं को जन्म देते हैं । जो साहित्य दूसरों की नकल करके लिखा जाए, वह अधम कोटि का होता है और सांस्कृतिक असमर्थता का सूचक होता है । जो महान साहित्यकार हैं, उनकी कला की आवृत्ति नहीं हो सकती, यहाँ तक कि एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने पर उनका कलात्मक सौन्दर्य ज्यों-का-त्यों नहीं बना रहता । औद्योगिक उत्पादन और कलात्मक सौन्दर्य ज्यों-का-त्यों नहीं बना रहता । औद्योगिक उत्पादन और कलात्मक उत्पादन में यह बहुत बड़ा अन्तर है । अमरीका ने ऐटमबम बनाया, रूस ने भी बनाया, पर शेक्सपियर के नाटकों जैसी चीज का उत्पादन दुबारा इंग्लैंड में भी नहीं हुआ ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मनुष्य की चेतना को आर्थिक सम्बन्धों से प्रभावित मानते हुए उसकी सापेक्ष स्वाधीनता स्वीकार करता है । आर्थिक सम्बन्धों से प्रभावित होना एक बात है, उनके द्वारा चेतना का निर्धारित होना और बात है । भौतिकवाद का अर्थ भाग्यवाद नहीं है । सब कुछ परिस्थितियों द्वारा अनिवार्यतः निर्धारित नहीं हो जाता । यदि मनुष्य परिस्थितियों का नियामक नहीं है तो परिस्थितियाँ भी मनुष्य की नियामक नहीं हैं । दोनों का सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक है । यही कारण है कि साहित्य सापेक्षरूप में स्वाधीन होता है ।

गुलामी अमरीका में थी और गुलामी एथेन्स में थी किन्तु एथेन्स की सभ्यता ने सारे यूरूप को प्रभावित किया और गुलामों के अमरीकी मालिकों ने मानव संस्कृति को कुछ भी नहीं दिया ।

सामन्तवाद दुनियाभर में कायम रहा पर इस सामन्ती दुनिया में महान कविता के दो ही केन्द्र थे–भारत और ईरान। पूँजीवादी विकास यूरूप के तमाम देशों में हुआ पर रैफेल, लेओनार्दो दा विंची और माइकेल एंजेलो इटली की देन हैं। यहाँ हम एक ओर यह देखते हैं कि विशेष सामाजिक परिस्थितियों में कला का विकास सम्भव होता है, दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि समान सामाजिक परिस्थितियाँ होने पर भी कला का समान विकास नहीं होता। यहाँ हम असाधारण प्रतिभाशाली मनुष्यों की अद्वितीय भूमिका भी देखते हैं।

साहित्य के निर्माण में प्रतिभाशाली मनुष्यों की भूमिका निर्णायक है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये मनुष्य जो करते हैं, वह सब अच्छा ही अच्छा होता है, या उनके श्रेष्ठ कृतित्व में दोष नहीं होते। कला का पूर्णतः निर्दोष होना भी एक दोष है। ऐसी कला निर्जीव होती है। इसीलिए प्रतिभाशाली मनुष्यों की अद्वितीय उपलब्धियों के बाद कुछ नया और उल्लेखनीय करने की गुंजाइश बनी रहती है। आजकल व्यक्ति पूजा की काफी निन्दा की जाती है। किन्तु जो लोग सबसे ज्यादा व्यक्ति पूजा की निन्दा करते हैं, वे सबसे ज्यादा व्यक्ति पूजा का प्रचार भी करते हैं। यदि कोई भी साहित्यकार आलोचना से परे नहीं है, तो राजनीतिज्ञ यह दावा और भी नहीं कर सकते, इसलिए कि साहित्य के मूल्य, राजनीतिक मूल्यों की अपेक्षा, अधिक स्थायी हैं। अंग्रेज कवि टेनीसन ने लैटिन कवि वर्जिल पर एक बड़ी अच्छी कविता लिखी थी। इसमें उन्होंने कहा है कि रोमन साम्राज्य का वैभव समाप्त हो गया पर वर्जिल के काव्य सागर की ध्वनि-तरंगें हमें आज भी सुनाई देती हैं और हृदय को आनन्द विह्वल कर देती हैं। कह सकते हैं कि जब ब्रिटिश साम्राज्य का कोई नामलेवा और पानीदेवा न रह जाएगा, तब शेक्सपियर, मिल्टन और शेली विश्व संस्कृति के आकाश में वैसे ही जगमगाते नजर आएँगे जैसे पहले, और उनका प्रकाश पहले की अपेक्षा करोड़ों नई आँखें देखेंगी।

साहित्य के विकास में प्रतिभाशाली मनुष्यों की तरह, जनसमुदायों और जातियों की विशेष भूमिका होती है। इसे कौन नहीं जानता कि यूरूप के सांस्कृतिक विकास में जो भूमिका प्राचीन यूनानियों की है, वह अन्य किसी जाति की नहीं है। जनसमुदाय जब एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में प्रवेश करते हैं, तब उनकी अस्मिता नष्ट नहीं हो जाती। प्राचीन यूनान अनेक गणसमाजों में बंटा हुआ था। आधुनिक यूनान एक राष्ट्र है। यह आधुनिक यूनान अपनी प्राचीन संस्कृति से अपनी एकात्मकता स्वीकार करता है या नहीं? 19वीं सदी में शेली और बायरन ने अपनी स्वाधीनता के लिए लड़नेवाले यूनानियों को ऐसी एकात्मकता पहचनवाने में बड़ा परिश्रम किया। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान इस देश ने इसी तरह अपनी एकात्मकता पहचानी। इतिहास का प्रवाह ही ऐसा है कि वह विच्छिन्न है और अविच्छिन्न भी। मानव समाज बदलता है और अपनी पुरानी अस्मिता कायम रखता है। जो तत्त्व मानव समुदाय को एक जाति के रूप में संगठित करते हैं, उनमें इतिहास और सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर निर्मित यह अस्मिता का ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बंगाल विभाजित हुआ और है, किन्तु जब तक पूर्वी और पश्चिमी

बंगाल के लोगों को अपनी साहित्यिक परम्परा का ज्ञान रहेगा, तब तक बंगाली जाति सांस्कृतिक रूप से अविभाजित रहेगी । विभाजित बंगाल से विभाजित पंजाब की तुलना कीजिए, तो ज्ञात हो जाएगा कि साहित्य की परम्परा का ज्ञान कहाँ ज्यादा है, कहाँ कम है, और इस न्यूनाधिक ज्ञान के सामाजिक परिणाम क्या होते हैं ।

एक भाषा बोलनेवाली जाति की तरह अनेक भाषाएँ बोलनेवाले राष्ट्र की भी अस्मिता होती है । संसार में इस समय अनेक राष्ट्र बहुजातीय हैं, अनेक भाषा-भाषी हैं । जिस समय राष्ट्र के सभी तत्त्वों पर मुसीबत आती है, तब उन्हें अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का ज्ञान बहुत अच्छी तरह हो जाता है । जिस समय हिटलर ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया, उस समय यह राष्ट्रीय अस्मिता जनता के स्वाधीनता संग्राम की समर्थ प्रेरक शक्ति बनी । सोवियत संघ के लोग हिटलर विरोधी संग्राम को उचित ही महान राष्ट्रीय (अथवा देशभक्तिपूर्ण) संग्राम कहते हैं । इस युद्ध के दौरान खासतौर से रूसी जाति ने बार-बार अपनी साहित्य-परम्परा का स्मरण किया । सोवियत समाज जारशाही रूस के समाज से भिन्न है । समाज व्यवस्था के विचार से इतिहास का प्रवाह विच्छिन्न है, जातीय अस्मिता की दृष्टि से यह प्रवाह अविच्छिन्न है । जारशाही रूस के तोल्स्तोय सोवियत समाज में पढ़े जानेवाले लोकप्रिय साहित्यकार हैं, और रूसी जाति की अस्मिता को सुदृढ़ और पुष्ट करनेवाले महान साहित्यकार हैं । समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर जातीय अस्मिता खण्डित नहीं होती वरन् और पुष्ट होती है । इसके साथ सोवियत संघ में बहुजातीय राष्ट्रीयता का पुनर्जन्म हुआ है और यह राष्ट्रीयता अब एक सामाजिक शक्ति है जैसी वह 1917 से पहले नहीं थी । जारशाही रूस में बहुत-सी जातियाँ पराधीन बनाकर रखी गई थीं । उन सब पर रूसी जाति के सामन्त और पूँजीपति शासन करते थे । जैसे और बहुत-से साम्राज्य होते हैं, वैसे ही यह भी एक साम्राज्य था। 1917 की क्रांति के बाद रूसी और गैर रूसी जातियों के आपसी संबंधों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ । बहुत-सी जातियाँ सोवियत संघ में शामिल न हुईं, अलग हो गईं । कुछ विलम्ब से, दूसरे महायुद्ध से कुछ ही पहले, अन्य जातियाँ उसमें शामिल हुईं । सोवियत संघ में आज जितनी जातियाँ शामिल हैं, उनका वैसा मिला-जुला राष्ट्रीय इतिहास नहीं है, जैसा भारत की जातियों का है । राष्ट्र के गठन में इतिहास का अविच्छिन्न प्रवाह बहुत बड़ी निर्धारक शक्ति है । यूरूप के लोग यूरोपियन संस्कृति की बात करते हैं । पर यूरूप कभी राष्ट्र नहीं बना । और अब तो पूर्वी यूरूप और पश्चिमी यूरूप, दो यूरूपों का अलग उल्लेख आम बात है । संसार का कोई भी देश, बहुजातीय राष्ट्र की हैसियत से, इतिहास को ध्यान में रखें तो, भारत का मुकाबला नहीं कर सकता । यहाँ राष्ट्रीयता एक जाति द्वारा दूसरी जातियों पर राजनीतिक प्रभुत्व कायम करके स्थापित नहीं हुई । वह मुख्यत: संस्कृति और इतिहास की देन है । इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है । इस देश की संस्कृति से रामायण और महाभारत को अलग कर दें, तो भारतीय साहित्य की आन्तरिक एकता टूट जाएगी । किसी भी बहुजातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की ऐसी निर्णायक भूमिका नहीं रही, जैसी इस देश में व्यास और वाल्मीकि की है । इसलिए किसी

भी देश के लिए साहित्य की परम्परा का मूल्यांकन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना इस देश के लिए है ।

यदि समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर जारशाही रूस नवीन राष्ट्र के रूप में पुनर्गठित हो सकता है, तो भारत में समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर यहाँ की राष्ट्रीय अस्मिता पहले से कितना पुष्ट होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है । वास्तव में समाजवाद हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता है । पूँजीवादी व्यवस्था में शक्ति का इतना अपव्यय होता है कि उसका कोई हिसाब नहीं है । देश के साधनों का सबसे अच्छा उपयोग समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है । अनेक छोटे-बड़े राष्ट्र, जो भारत से ज्यादा पिछड़े हुए थे, समाजवादी व्यवस्था कायम करने के बाद पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा शक्तिशाली हो गए हैं, और उनकी प्रगति की रफ्तार किसी भी पूँजीवादी देश की अपेक्षा तेज है । भारत की राष्ट्रीय क्षमता का पूर्ण विकास समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है ।

और साहित्य की परम्परा का पूर्ण ज्ञान समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है । समाजवादी संस्कृति पुरानी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ती, वह उसे आत्मसात करके आगे बढ़ती है । अभी हमारे देश की निरक्षर निर्धन जनता नए और पुराने साहित्य की महान उपलब्धियों के ज्ञान से वंचित है । जब वह साक्षर होगी, साहित्य पढ़ने का उसे अवकाश होगा, सुविधा होगी, तब व्यास और वाल्मीकि के करोड़ों नए पाठक होंगे । वे अनुवाद में ही नहीं, उन्हें संस्कृत में भी पढ़ेंगे । और तब इस देश में इतने बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान होगा कि सुब्रह्मण्य भारती की कविताएँ मूलभाषा में उत्तर भारत के लोग पढ़ेंगे और रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ मूलभाषा में तमिलनाडु के लोग पढ़ेंगे । यहाँ की विभिन्न भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य जातीय सीमाएँ लाँघकर सारे देश की सम्पत्ति बनेगा । जिस भाषा के बोलनेवाले अधिकतर निरक्षर हैं और अपने साहित्यकारों का बहुत से बहुत नाम सुनते हैं, वे तो इनकी रचनाएँ पढ़ेंगे ही । और तब अंग्रेजी भाषा प्रभुत्व जमाने की भाषा न होकर वास्तव में ज्ञान-अर्जन की भाषा होगी । और हम केवल अंग्रेजी नहीं, यूरूप की अनेक भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करेंगे, और एशिया की भाषाओं के साहित्य से हमारा परिचय गहरा होगा । तब मानव संस्कृति की विशद धारा में भारतीय साहित्य की गौरवशाली परम्परा का नवीन योगदान होगा ।

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. परंपरा का ज्ञान किनके लिए सबसे ज्यादा आवश्यक है और क्यों ?
2. परंपरा के मूल्यांकन में साहित्य के वर्गीय आधार का विवेक लेखक क्यों महत्त्वपूर्ण मानता है ?
3. साहित्य का कौन-सा पक्ष अपेक्षाकृत स्थायी होता है ? इस संबंध में लेखक की राय स्पष्ट करें ।
4. 'साहित्य में विकास प्रक्रिया उसी तरह सम्पन्न नहीं होती, जैसे समाज में' लेखक का आशय स्पष्ट कीजिए ।
5. लेखक मानव चेतना को आर्थिक संबंधों से प्रभावित मानते हुए भी उसकी सापेक्ष स्वाधीनता किन दृष्टांतों द्वारा प्रमाणित करता है ?
6. साहित्य के निर्माण में प्रतिभा की भूमिका स्वीकार करते हुए लेखक किन खतरों से आगाह करता है ?
7. राजनीतिक मूल्यों से साहित्य के मूल्य अधिक स्थायी कैसे होते हैं ?
8. जातीय अस्मिता का लेखक किस प्रसंग में उल्लेख करता है और उसका क्या महत्त्व बताता है ?
9. जातीय और राष्ट्रीय अस्मिताओं के स्वरूप का अंतर करते हुए लेखक दोनों में क्या समानता बताता है ?
10. बहुजातीय राष्ट्र की हैसियत से कोई भी देश भारत का मुकाबला क्यों नहीं कर सकता ?
11. भारत की बहुजातीयता मुख्यत: संस्कृति और इतिहास की देन है । कैसे ?
12. किस तरह समाजवाद हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता है ? इस प्रसंग में लेखक के विचारों पर प्रकाश डालें ।
13. निबंध का समापन करते हुए लेखक कैसा स्वप्न देखता है ? उसे साकार करने में परंपरा की क्या भूमिका हो सकती है ? विचार करें ।
14. साहित्य सापेक्ष रूप में स्वाधीन होता है । इस मत को प्रमाणित करने के लिए लेखक ने कौन-से तर्क और प्रमाण उपस्थित किए हैं ?
15. **व्याख्या करें –**

    विभाजित बंगाल से विभाजित पंजाब की तुलना कीजिए, तो ज्ञात हो जाएगा कि साहित्य की परंपरा का ज्ञान कहाँ ज्यादा है, कहाँ कम है और इस न्यूनाधिक ज्ञान के सामाजिक परिणाम क्या होते हैं ।

पाठ के आस-पास

1. **निम्नांकित विषयों की जानकारी शिक्षकों से प्राप्त करें -**

   (क) वर्ग-विभाजन (ख) प्रगतिशील आलोचना (ग) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद (घ) सामंतवाद, पूँजीवाद और समाजवाद (ङ) रैफेल, लियोनार्दो दा विंची, माइकेल एंजेलो (च) टेनीसन, वर्जिल, शेक्सपियर, मिल्टन, शेली (छ) जारशाही, सोवियत समाज (ज) सुब्रह्मण्यम भारती

भाषा की बात

1. पाठ से दस अविकारी शब्द चुनिए और उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए ।
2. **निम्नलिखित पदों में विशेष्य का परिवर्तन कीजिए –**
   बुनियादी परिवर्तन, मूर्त्त ज्ञान, अभ्युदयशील वर्ग, समाजवादी व्यवस्था, श्रमिक जनता, प्रगतिशील आलोचना, अद्वितीय भूमिका, राजनीतिक मूल्य
3. पाठ से संज्ञा के भेदों के चार-चार उदाहरण चुनें ।
4. **निम्नलिखित सर्वनामों के प्रकार बताते हुए उनका वाक्य में प्रयोग करें –**
   जो, वे, वह, यह, मैं, वैसा, कोई, कुछ, कौन, जैसा, हमारे, हम

शब्द निधि

प्रगतिशील आलोचना	:	जो आलोचना सामाजिक विकास को महत्त्व देती हो
भौतिकवाद	:	वह विचारधारा जो चेतना या भाव का मूल पदार्थ को मानती हो
अमूर्त्त	:	जो मूर्त्त न हो, जो दिखाई न पड़े, भावमय
विकासमान	:	विकास करता हुआ
प्रतिबिंबित	:	झलकता हुआ, जिसकी छाया दिखलाई पड़े
अभ्युदयशील	:	तरक्की करता हुआ, उन्नतिशील
ह्रासमान	:	नष्ट होता हुआ, छीजता हुआ, मरता हुआ
यथेष्ट	:	पर्याप्त
आदिम	:	अतिप्राचीन, सबसे पहला
व्यंजित	:	प्रकट, ध्वनित, अभिव्यक्त
पूर्ववर्ती	:	जो पहले से विद्यमान हो, पहले से मौजूद रहनेवाला, पूर्वज
नियामक	:	निर्मित और नियमबद्ध करनेवाला
द्वंद्वात्मक	:	जिसमें दो परस्पर विरोधी स्थितियों या पक्षों का संघर्ष हो
नामलेवा	:	नाम लेने वाला, उत्तराधिकारी
अस्मिता	:	अस्तित्व, पहचान
एकात्मकता	:	एकता, आत्मा की एकता
अविच्छिन्न	:	लगातार, निरंतर, अटूट
न्यूनाधिक	:	कमोबेश
समर्थ	:	सक्षम, सुयोग्य
वंचित	:	अभावग्रस्त
प्रभुत्व	:	अधिकार, स्वामित्व
विशद	:	व्यापक, विस्तृत
पुनर्गठित	:	फिर से व्यवस्थित
अपव्यय	:	फिजूलखर्ची
आत्मसात्	:	अपना हिस्सा बनाना, अपने में समाहित कर लेना

ABSOL ... PATNA

पंडित बिरजू महाराज

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

जित जित मैं निरखत हूँ

आज कलाप्रेमी जनसाधारण तथा नृत्य रसिकों के बीच कथक और बिरजू महाराज एक-दूसरे के पर्यायवाची से बन गये हैं । महाराज की अथक साधना, एकांतनिष्ठा और कल्पनाशील सर्जनात्मकता के संयोग से ही यह संभव हो सका है । कथक के व्याकरण और कौशल को उन्होंने सार्थक सौंदर्यबोध और काव्य दिया है । वे कथक के लालित्य के कवि हैं । परंपरा की प्रामाणिकता की रक्षा करते हुए उन्होंने सर्जनात्मक साहस के साथ कथक का अनेक नई दिशाओं में विस्तार किया है तथा यह सिद्ध किया है कि शास्त्रीय कला जड़ या स्थिर नहीं है । उसमें एक निरंतर गतिशीलता और समकालीनता बरकरार है ।

लखनऊ घराने के वंशज और सातवीं पीढ़ी के इस कलाकार में मानो सातों पीढ़ियों का सौंदर्य केंद्रीभूत हो गया है । सौम्य, हँसमुख, मिलनसार व्यक्तित्व और सहज-निष्कपट लगभग बच्चे का भोलापन लिए बिरजू महाराज को देखकर इनकी महान प्रतिभा का अंदाज लगाना कठिन है । किंतु बात करते-करते उनका न जाने कहाँ खो जाना, उँगलियों का निरंतर गिनती में उलझे रहना और अचानक चेहरे पर नितांत शून्य भाव बेचैन करने वाला होता है । अचानक कुछ कौंधता-सा है उनकी आँखों में और फिर वही फुसलाती सी सरल मुस्कराहट, दोहरा बदन, मँझोला कद, चेचक के हल्के दाग और बड़ी आँखों वाला ढीलाढाला व्यक्ति मंच पर एकदम और ही हो जाता है । गजब

का लोच, फुर्ती और हल्कापन......कथक नृत्य का सौंदर्य मानो मूर्तिमान हो उठा हो।

यहाँ बिरजू महाराज की सुयोग्य शिष्या मशहूर नृत्यांगना और रंगकर्म की पत्रिका 'नटरंग' की संपादक *रश्मि वाजपेयी* की महाराज से बातचीत किंचित संपादित रूप में अविकल प्रस्तुत है। बातचीत के बहाने बिरजू महाराज का अंतरंग जीवन उनके आत्मकथनों में झलक उठता है। पाठ के क्रोड़स्थ अंतःपाठ उन्हीं की दो काव्य रचनाओं के हैं।

रश्मि वाजपेयी : अपने बारे में कुछ बताएँ।

बिरजू महाराज : जन्म मेरा लखनऊ के जफरीन अस्पताल में 1938, 4 फरवरी, शुक्रवार, सुबह 8 बजे; वसंत पंचमी के एक दिन पहले हुआ। घर में आखिरी सन्तान। तीन बहनों के बाद। सबसे छोटी बहन मुझसे आठ नौ साल बड़ी। अम्मा तब 28 के लगभग रही होंगी। बहनों का जन्म रामपुर में क्योंकि बाबूजी यहाँ 22 साल रहे। बड़ी बहन लगभग 15 साल बड़ी। उस समय बाबूजी रायगढ़ आदि राजाओं के यहाँ भी गए। मैं डेढ़ दो साल का था। उस समय विभिन्न राजा कुछ समय के लिए कलाकारों को माँग लिया करते थे। पटियाला भी गए थे पहले। रायगढ़ दो ढाई साल रहे होंगे। रामपुर लौटकर आए। रामपुर काफी अरसे रहे। जब पाँच छह साल के थे तो अकसर नवाब याद कर लिया करते थे। हलकारे आ गए तो जाना ही पड़ता था। चाहे जो भी वक्त हो।

छह साल की उम्र में मैं नवाब साहब को बहुत पसंद आ गया। मैं नाचता था जाकर। पीछे पैर मोड़कर बैठना पड़ता था। चूड़ीदार पैजामा साफा, अचकन पहन कर। अम्मा जी बेचारी बहुत परेशान। उन्होंने हमारे तनख्वाह भी बाँध दी थी। बाबूजी रोज हनुमानजी का प्रसाद माँगे कि 22 साल गुजर गए, अब नौकरी छूट जाए। नवाब साहब बहुत नाराज कि तुम्हारा लड़का नहीं होगा तो तुम भी नहीं रह सकते। खैर बाबू जी बहुत खुश हुए और उन्होंने मिठाई बाँटी। हनुमान जी को प्रसाद चढ़ाया कि जान छूटी।

वहाँ से फिर निर्मला जी (जोशी) के स्कूल में यहाँ दिल्ली में हिन्दुस्तानी डान्स म्यूजिक में चले गए। यहाँ दो तीन साल काम करते रहे। ये शायद 43 की बात रही होगी। उस उम्र में जुबली टॉकीज दिल्ली के बड़े भारी कांफ्रेंस में मेरा नाच रखा गया। यह हाल अभी भी है। इसमें मैं एक कलाकार के नाते आमंत्रित था। उस उम्र में न जाने क्या नाचा रहा होऊँगा। तबला बाबूजी ने बजाया। अकसर वे बजा देते थे। पर उन्होंने मेरी आदत डाल दी थी अक्सर जहाँ वे खुद नाचते तो पहले मुझे नचवाते थे और खूब जोरों से जमकर नाचता था। यों मुझे याद तो था नहीं पर वे जो बोल देते थे तो टुकड़े का मेजरमेंट मैं फट से याद कर लेता था। जैसे **दिग दिग थेई ता थेई**। मैं अंदाज कर लेता यह नाप मेरा ईश्वर की कृपा से शुरू में अच्छा रहा। खूब नाचा। उसी समय यहाँ कपिला जी, लीला कृपलानी आदि हिन्दुस्तानी डांस अकादेमी में थीं।

बाबूजी के साथ मैं रोज आता था। हालाँकि लौटते लौटते मुझे नींद आ जाती थी ताँगे में। मुझे हैट पहनने का बहुत शौक था। एक बार हैट पहने ताँगे में लेटा था। पार्टिशन के कारण चैकिंग भी चल रही थी; हैट गिर गया तो उन्हें गुस्सा आया – आते हैं स्कूल और सो जाते हैं। फिर उठाया। झण्डेवालान के पास उस समय यों भी डर लगता था पहाड़ी से रात में। बाबूजी के हाथ में छड़ी देखकर पुलिसवाले ने टोका भी, क्योंकि उन दिनों यह सब नहीं रख सकते थे। खैर उन दिनों ऐसे ही दिन बीतते रहे। लेकिन कपिला जी लालजी की जो हायर ट्रेनिंग होती थी – वह मैं याद कर लेता था और अगले दिन बाबूजी से कहूँ कि मुझे याद हो गया तो मानते नहीं थे। फिर जब अम्मा जी कहें सुन लो ऐसे परन किड़ तक धुन-धुन सात साल की उम्र में खूब सुनाता का यह नहीं था कि जम गए से यहाँ हूँ। तब जहाँ भी नौकरी आ गए दो तीन महीने। यह महीने दिल्ली चले आए। बंदिश मेरा भी मन नहीं लगता और तरह वक्त बीता। यहाँ दिल्ली लगे – काटा मारी होने लगी तो चले गए।

तालीम इसी किस्म की ताऊ जी को सिखा रहे हैं, उसे

श्याम श्याम श्याम है ॥
वृक्षन की पतियन में
फूलन की कलियन में
पवन के झकोरन में
श्याम श्याम श्याम है ॥
गुणियन के तालन में
गायक के स्वरन में
कवियन के हृदय में
श्याम श्याम श्याम है ॥
याही ब्रजश्याम तोसों
अरज करे कर जोरे
अंत हूँ शरण पाऊँ
श्याम श्याम श्याम है ॥

और मक्का लगाएँ तो सुनते थे। तो नातिट ता धाधिनता। ये परनें उस उनको। दरअसल उस समय नौकरी एक ही जगह। जैसे मैं 28 साल की वहाँ रहे कुछ दिन फिर लखनऊ स्वतंत्रता थी। रामपुर हैं तो तीन नहीं थी कि कहीं हिल नहीं सकते। लगता मैं भी ऐसा करूँ। बस इसी में जब हिन्दू–मुस्लिम दंगे होने डर के मारे अम्मा और मैं लखनऊ

थी। कुछ क्लास में देखा। कुछ देखा। कुछ लखनऊ में। इसके अलावा प्रायवेट प्रोग्राम जिनमें बाबूजी जाते थे जौनपुर, मैनपुरी, कानपुर, देहरादून, कलकत्ता, बंबई आदि, इनमें मुझे जरूर रखते थे। पहले इसीलिए कलकत्ते में बहुत मजा आया। उसमें फर्स्ट प्राइज मिलने वाला था। उसमें शम्भू महाराज चाचाजी और बाबूजी दोनों नाचे। पर उसमें फर्स्ट प्राइज मुझे मिला। तो चाचा कहने लगे देख भैया बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुभान अल्लाह। और मैं बहुत खुश। चेन और मैडल वगैरह मुझे मिला। उस समय मैं आठ साढ़े आठ साल का था। समझ लीजिए कि नौ साढ़े नौ साल के भीतर ही सब तमाशे हो गए मेरी जिन्दगी के। हाँ मैं आमलेट नहीं खाता था। चाचाजी खाते थे। तो कहे अबे दाल का चिल्ला खाएगा। जब अण्डा कहकर पूछें तो नहीं खाता था पर जब मूंग की दाल का कहें तो बड़े मजे से खा लेता था, तो शंभू महाराज शुरू से ही बड़े शौकीन तबीयत के थे। लच्छू महाराज शुरू से ही बड़े अपटूडेट रहते थे। जब ये शायद 28-30 साल के थे तब से गए हैं कलकत्ते न्यू थियेटर्स कंपनी में। चालीस साल कलकत्ते और बंबई मिलाकर फिल्म में बीते।

हाँ साढ़े नौ साल का था जब बाबूजी की मृत्यु हुई। उनके साथ आखिरी प्रोग्राम मैनपुरी

में था मेरा । वे 54 साल के थे । लू लग गई थी उन्हें । और यहाँ इनकी जगह मैं नाचा था और उन्होंने भाव बताया था । उस समय क्योंकि उन्हें बुखार था । लू उन्हें मैनपुरी में ही लगी थी । वहाँ से हमलोग लौटकर आए तो 16-20 दिन रहे वो । कमजोरी आती गई । बाबूजी की यह आदत थी और मेरी भी आदत है कि अपना दुख और कष्ट ज्यादा किसी से कहता नहीं हूँ । वो भी छिपाते रहते थे । उन्हें भी शुगर था । तो इक्के पर चौक वगैरह चले गए और सबसे मिल आए । जितने भी अमीनाबाद में थे बाजार आदि में मिलने वाले और सब ही प्यार करते थे उन्हें । वह उनके साथ आखिरी प्रोग्राम था ।

मुझे तालीम बाबूजी से ही मिली । गण्डा भी बाँधा उन्होंने मुझे । जब बाँधा तो अम्मा से कहा जब तक तुम्हारा लड़का मुझे नजराना नहीं देगा गण्डा नहीं बाधूँगा । तो मुझे 500 रुपए के दो प्रोग्राम मिले थे । जब पाँच सौ आया तो गण्डा बाँधा उन्होंने । और कहा इसमें एक पैसा नहीं दूँगा । यह मेरा पैसा है । मैं इसका गुरु हूँ और अब इसने मुझे नजराना दिया है । तो 500 रुपए देकर मैंने गण्डा बंधवाया तो मुझे और जगत कक्कड़, एक लड़का है लखनऊ में, दोनों को एक साथ गण्डा बाँधा । तो शागिर्द मैं बाबूजी का हूँ ।

फिर पिताजी की मृत्यु हुई और उस समय मैं इतना छोटा था कि उनका दुख भी ठीक समझ में नहीं आया । उनके मरते ही हम लोगों के बहुत खराब दिन शुरू हो गए । उधर शम्भू महाराजजी का शोक । कर्जा लेकर खाना-पीना-शादियाँ देना घर भर को । उनके दो बच्चों की मृत्यु भी लगभग उन्हीं दिनों हुई । यह सब उसी समय की बात है । बाबूजी की मृत्यु के साथ ही साथ । पिताजी बहुत दुखी रहते थे उनसे । उसी समय मैं अम्मा को लेकर नेपाल गया । सोचिए उस समय बिना पिताजी के । मुजफ्फरपुर भी गए । अम्मा ले गईं । बाँसबरेली भी । उस समय वह हालत थी कि पचास रुपए भी मिल जाएँ कहीं से तो बहुत हैं । पहले का सब पैसा हमारे टाइम तक खत्म हो गया था । कर्जदार बहुत हो गए थे । बाबूजी किसी का भी भला करने के लिए एक से लेकर दूसरे को दे देते थे । मतलब सौ लिए दो सौ दूँगा कहकर । यह उनकी अजीब सी आदत थी । कानपुर में ढाई साल रहा । जिसमें 25-25 रुपए की दो ट्यूशन कीं मैंने आर्यनगर में । पैदल तीन मील जाता था । और रास्ते में कब्रिस्तान पड़ता था तो डर भी लगता था । दस ग्यारह साल की उम्र थी मेरी । अब पचास रुपए में रिक्शे पर खर्च करता तो क्या बचता और ट्यूशन से नागा हो तो पैसा अलग काट लेते थे । 50 रुपए में काम करके किसी तरह पढ़ता रहा मैं । एक सीताराम बागला करके लड़का था अमीर घर का । उसे मैं डांस सिखाता और वह बेचारा मुझे पढ़ा देता था । हाई स्कूल की पढ़ाई । कहाँ चिन्ता, कहाँ

आज प्रिय श्यामा श्याम भई ॥
एक अचरज देखि सखी मैं
आलि सौं कहित भई
अंकहि भरि भरि कान्ह राधिके
एकल रूप भई ॥
लै कान्ह की बाँसुरी
अपने करहु लई
बार बार लै अक्षर लगावते
बंसी तान भई ॥
निरखत छवि ब्रज श्याम रंग सों
राधा श्याम भई ।

अम्मा, कहाँ 50 रुपए की ट्यूशन सब बिखरा हुआ इसलिए फेल भी हो गया । मतलब पढ़ाई अच्छी तरह नहीं कर पाया । अच्छी तरह पढ़ता तरीके से तो ईश्वर की कृपा से मेरा दिमाग बहुत तेज था शुरू से । नेपाल भी इसी दौरान गए थे । एक हमारे रिश्तेदार थे वहाँ झुमकलाल करके । तो अम्मा इसीलिए ले गई थी कि कुछ इनाम वगैरह मिल जाए । बस यही एक कारण था । वहाँ रहे नहीं । खास प्राप्ति नहीं हुई । जाते में मुजफ्फरपुर भी गए थे । जयपुर भी गया मैं । वहाँ भी कोशिश की । मतलब यह कि प्रोग्राम मिल जाए दो चार सौ मिल जाएँ तो कुछ महीने कट जायेंगे । ऐसी हालत थी । हम लोग रहते एक मकान में ही थे, पर ऊपर नीचे । चूल्हा शुरू से ही अलग था । महाराज जी का अपना खानापीना जैसा था । पिताजी के समय से ही दादी, पिता अलग रहते, चाचा अलग । और वे मारा पीटी बहुत करते थे ।

चौदह साल की उम्र में जब मैं वापस लखनऊ आया फेल होकर तब कपिला जी अचानक लखनऊ पहुँची मालूम करने कि लड़का जो है वह कुछ करता भी है या आवारा या गिरहकट हो गया, वह है कहाँ । तब अम्मा जी ने दिखाया मुझे कि करते तो हैं थोड़ा बहुत जो सीख पाए थे । तब कपिला जी मुझे संगीत भारती (जो पहले हिन्दुस्तानी म्यूजिक डांस अकादमी था वही संगीत भारती हो गया था) लाई । छह महीने बढ़ गए तो बहुत खुश हुआ मैं । उस समय 250 रुपए मिलते थे । और रहता था दरियागंज में एक दुछत्ती थी जैन साहब का मकान था। अम्माजी को यह दुख कि जैनियों का मकान है लड़के को प्याज खाने को नहीं मिल रहा है । मछली तो खाता नहीं था। पर उसमें छोटी सी तो जगह थी । एक टेबिल फैन ले लिया था । दरियागंज से पाँच या नौ नंबर बस पकड़ता था। कभी रीगल पर और तो कभी ओडेन सिनेमा के पास उतरता था । वह स्कूल था रिवोली के पास तो एक महीने तक मैं रास्ता ही भूल जाता था । एक से खंबे हैं चारों तरफ तो मैं किसी भी सीढ़ी से चढ़ जाता था । बड़ी मुश्किल से फिर निशान बनाए कि यहाँ से जाओ यहाँ से जाओ ।

हाँ एक घटना बहुत दुखदायी रही शुरू में बाबूजी की मृत्यु के समय । बिल्कुल पैसा नहीं था घर में कि उनका दसवाँ किया जा सके । दस दिन के अंदर सोचिए मैंने दो प्रोग्राम किए । और उन दो प्रोग्राम से 500 इकट्ठे हुए तो दसवाँ और तेरहीं की गई । बाहर मित्रों आदि को भी शायद अंदाज नहीं रहा होगा कि घर की ऐसी हालत है । जो भी हो यह मुझे अच्छी तरह याद है कि पिताजी का मरना, फिर उन दस दिनों में मेरा नाचना और पैसे इकट्ठे होना और उनसे ही दसवाँ तेरही का इन्तजाम होना । यह मुझे अच्छी तरह याद है । उससे बड़ा कष्ट और कुछ नहीं हुआ होगा । ऐसी हालत में मैं नाचने गया । मेरा ख्याल है-कानपुर या देहरादून । ऐसी जगह

लखनऊ से वहाँ गया । नहीं नाचता तो पैसा कहाँ होता । यह बहुत बड़ा दुखद वक्त था...खैर ।

बहरहाल जब चौदह साल का था तो संगीत भारती आया । फिर जब एक साल हो गया तो कहने लगे अब तुम परमानेंट हो गए । मैंने वहाँ साढ़े चार साल काम किया । संगीत भारती में सबसे बड़ी कमी थी कि गुप्ता जी भरतनाट्यम, मणिपुरी आदि वालों को तो कहते थे पंक्ति बनाकर ग्रुप फिट करो, ये करो वो करो और समझते थे कथक में आठ मिनट का तानी करण का सोलो करवा दो बस वही काफी है। तो मुझे बहुत दुख होता था कि मैं कर सकता हूँ और मुझे करने नहीं देते । इसी धर्म-संकट में मैंने नौकरी छोड़ दी । करीब 56 के आसपास । लगभग आठ महीने मैं अलग रहा । मैं लखनऊ चला गया था । बस ऐसे ही । तब तक शम्भू महाराज आ चुके थे भारतीय कला केंद्र में । और सुमित्रा जी के यहाँ करजन रोड में सिखाते थे मायाराव को । संगीत भारती की कमाई से मैंने एक साइकिल खरीदी थी जो मेरे पास अभी भी है । और उस साइकिल को मैं नहीं बेचता हूँ । उसे देखकर मैं पुराना वक्त याद करता हूँ, किस तरह साइकिल पर मैं चढ़कर एक ट्यूशन करता था पचास रुपए की। संगीत भारती के पैसे काफी नहीं होते थे । फैमिली थी बाराखम्बा रोड पर, दो बच्चे थे मिकी और अनु । दो बार वहाँ सड़क पर गिर भी पड़ा मैं अनबेलेंस होकर । साइकिल कामचलाऊ आती थी ठीक से थोड़ी आती थी । बस के पैसे बचाने के लिए खरीदी थी ।

खैर भारतीय कला केंद्र आये पूसा रोड पर । वहाँ आये तो वहाँ भी छोटी क्लास मिली । यहाँ भी झमेला वाली क्लास । जबकि मेरे अंदर तो चरण टुकड़े तिहाइयाँ बल खातीं कि कोई आये तो उसे दूँ । पर वहाँ राह था कि बड़ी लड़कियाँ समझदार जो भी आयेंगी बड़े महाराज के पास आयेंगी । यहाँ काहे को आयेंगी । अब अठारह बीस साल का लड़का बड़े बुजुर्ग के आगे कहाँ चल सकता था । खैर उसमें से रश्मि जो एक लड़की मिली थी । उन्हें पूरे मन से सिखाया

बिरजू महाराज का नृत्य देखते हुए

(काव्यांश)

स्थिति नहीं, गति नहीं,
मुद्रा नहीं, न ही भंगिमा
लय में लयमान सृष्टि
कथाकृति मूर्तिमान

X X X

बजते हुए घुँघरू नहीं, पूरा का पूरा अंतरिक्ष
घूमता चमकते नक्षत्रों का
अंकुरित भाव में अँखरे जाते
उर्मिल पर सूक्ष्म
सूक्ष्म सुरों के गणितरूप
अगाध

X X X

पैर महज चलते नहीं, भाषाएँ बेबस जहाँ
वहाँ से आगे बढ़ हमें रँगते, रचते, गाते,
आत्मा को सँवारते, अवतार लेते लीलाकमल
बनते-बनाते

X X X

भाषा अनन्त की यह कैसी है
चरणों की चेरी है
ध्वनियों के छविगृह में शाश्वती
दीपित है हृदय-शिखा ।

-श्रीराम वर्मा

इसलिए भी कि हमको तो और कोई बड़ी लड़की मिलती नहीं कि इनको तैयार करेंगे। वो तालीम देखकर जो महाराज के यहाँ थी लड़कियाँ, अट्रेक्ट हुईं। और हमारी तरफ खिंचने लगीं क्योंकि तालीम जरा अच्छी थी मेरी।

बस उसके बाद से बैले वगैरह जो लच्छू महाराज जी ने मालती माधव पहला किया उसमें असिस्टेंट था। जबकि मजेदार बात यह है कि उसके एक्शन वगैरह सब मैं ही बनाता था अंदर अंदर और वे कहते थे अबे जब वहाँ जाएगा तो बोल देना सबके सामने — चाचाजी वह कौन सा मूवमेंट सिखाया था। तो मैं कहूँगा ओ वाला और फिर तू बना लीजो अपने आप। बस तो बनाता मैं था। और... बरखाबहार गोवर्धन लीला बनाने के लिए साल डेढ़ साल पहले आये थे। पूसा रोड में कॉलेज जब शुरू हुआ तो मैं आ गया था। नीनाजी के सामने ही मैंने जॉइन किया। केशवभाई और मैं साथ ही रहते थे। सूप आदि पीते थे। वे बिचारे बनाते थे, मुझे तो वह भी नहीं आता था। बस उसके बाद संगीत

भारती के जमाने में अपने होश में कलकत्ते में एक कांफ्रेंस में नाचा हूँ। उस समय दयाराम जी साथ थे। वही मेरी देखरेख करते थे। इनको ले जाता था रखवाली के लिए। वह जो मेरा नाच हुआ है वहाँ से कलकत्ते की ऑडियन्स ने मेरी बड़ी प्रशंसा की। इतनी की कि तमाम अखबारों में मैं छप गया एकदम। और वहाँ से दूसरे डांसर्स थे तमाम उनको भी लगा कि भई लड़के ने कुछ कर ही डाला है। मतलब वहाँ से लोगों को पता लगा कि मैं कुछ हूँ घर का। पर उस समय की कुछ कटिंग आदि नहीं है। बहुत पुरानी बात है। तो वहाँ से मेरा एक मोड़ हुआ। उसके बाद हरिदास स्वामी कांफ्रेंस बंबई ब्रजनारायण ने बुलाया। वह भी प्रोग्राम मेरा बहुत अच्छा गया। यह भारतीय कला केंद्र जॉइन करने के बाद। उसके बाद से फिर ईश्वर की कृपा से प्रोग्राम्स कलकत्ते, बंबई और उन्हीं दिनों कुछ अरसे के बाद मद्रास, भारतीय कला केंद्र के साथ ही गया था मद्रास। और धीरे-धीरे लोग मुझे चाहने लगे, इज्जत करने लगे। तीन साल जो संगीत भारती में बीते हैं उसमें मेरा नियम था सुबह चार बजे उठना बगैर नागा। चाहे बुखार चढ़ा है, चाहे खाँसी आ रही है।... सुबह पाँच बजे से रियाज पाँच, छह, सात, आठ तक रियाज फिर घर जाना और एक घंटे में तैयार होकर वापस नौ बजे दो घंटे की क्लास सुबह की। वह तीन साल मैंने खूब रियाज किया। मतलब यही सोचकर कि यही टाइम है अगर कुछ बढ़ना है तो अँधेरा कमरा करके किया करता था जब बाद में थक जाऊँ मैं तो जो भी साज हाथ आये कभी सितार, कभी गिटार, कभी हारमोनियम लेकर बजाऊँ, मतलब रिलेक्स होने के लिए। सितार भी मैं बहुत बजाने लगा था। अच्छा खासा हाँ खूब जोरों से। फिर हाथ में शक्लें बनने लगीं, मिजराब की वजह से तो मैंने डर के मारे छोड़ दिया कि डिस्टर्ब करेगा डांस में कि दो आँखें दिखेंगी तो मैंने सितार छोड़

दिया । गिटार बजाने लगा ऐसे ही थोड़ा शौक के मारे । सितार छोड़ा, गिटार छोड़ा फिर बाँसुरी मेरी बहुत दिन चली । मतलब शौक के मारे बजाता रहा । डागर साहब के साथ ट्रेन में भी अपने ऊपर बजा रहा हूँ वे नीचे गुनगुना रहे हैं । तो शौक उसका भी रहा फिर सरोद भी चलता रहा । खैर सरोद तो अभी भी मेरा शौक है । तबला मैं शुरू से बजाता हूँ । हारमोनियम थोड़ा बहुत, लहरा बजाने के लायक बहुत शुरू से बजाता हूँ । शुरू में फिल्मी गाने गाकर मैं पूरे मोहल्ले के लोगों को खुश किया करता था जब मैं छोटा था । और दो एक फेमिली थीं मोहल्ले में जो मेरा गाना सुनकर बहुत खुश होती थीं तो खाना-वाना भी खिला देती थीं । सिन्धी फैमिली थीं । वो बिचारी मेरी बहुत मदद करती थीं कभी दाल मखाने की सब्जी जब बने तो चुपचाप लाकर खिला देती थीं । उन दिनों मतलब हमारी हालत भी ऐसी थी कि कोई खिला दे तो अच्छा लगता था । खैर फिर उसके बाद तो तमाम फिर यहाँ काम करने लगे नए-नए । उसके बाद की कहानी तो फिर मालूम ही है आपको कि कितने बैले किए दुनिया भर के अलग-अलग हिस्टॉरिकल और फिर विदेश टूर भी शुरू हो गए । रूस पहला हमारा ट्रिप था जिसमें कुमारसंभव लेकर हम लोग सब गए थे ।

र० वा० :- आपको संगीत नाटक अकादेमी अवार्ड कब मिला ?

बि० म० :- 27 साल का था तब मैं । बहुत छोटे में ही । मेरी सब चीज बहुत छोटे में जल्दी-जल्दी हो गईं ।

र० वा० :- आपकी शादी किस सन् में हुई ?

बि० म० :- ओ माँ ! मैं अठारह साल का था बस इतना ही याद है मुझे । अठारह साल की उम्र में मेरी शादी अम्माजी ने कर दी । बहुत बड़ी गलती की । जब कि हम सोच रहे थे कि पहले काम कर लें फिर शादी करें । पर अम्माजी शायद घबराई हुई थीं, क्योंकि उनको तो चिंता थी कि पिताजी मर ही गए उनका क्या होगा पता नहीं । उस घबराहट में शादी कर दी । पर वह मेरे लिए बहुत नुकसानदेह रहा । एक जिम्मेवारी और ज्यादा बढ़ गई । और शायद नौकरी मैं नहीं भी करता । अपने रियाज में और अपने नाच में ही मस्त हो सकता था लेकिन इन पाबन्दियों ने शादी, गृहस्थी और लखनऊ और घर इन चीजों ने मुझे मजबूर कर दिया कि तुम नौकरी नहीं करोगे तो क्या करोगे। वरना छोड़छाड़ के मैं अपना अकेले फिल्म में भी चाचाजी की वजह से उनका असिस्टेंट बन सकता था बंबई जाकर, और लालच शुरू में जैसे

बच्चों को अकसर हुआ करता है कि बंबई भाग जाओ । पर खैर वो तो अच्छा ही हुआ जो नहीं गया । कुछ समझदार लोगों ने मुझे एडवाइज किया कि ये ठीक नहीं है । अच्छा ही हुआ जो बच गया । खैर...बाद का हमारा किस्सा फिर सत्यजीत रे की फिल्म का रिसेन्ट किया था । उसके बाद से भी मेरी एक बड़ी खास आदत रही है जैसे कि मेरे बाबूजी की भी थी कि जब शागिर्द को सिखा रहे हैं तो पूर्णरूप से मेहनत करके सिखाना और अच्छा बना देना है । ऐसा बना देना कि मैं खुद हूँ । यह कोशिश है । पर अब भगवान की कृपा भी होनी चाहिए तब । मतलब कोशिश यही रहती है कि मैं कोई चीज चुराता नहीं हूँ कि अपने बेटे के लिए ये रखना है उसको सिखाना है । उस लड़की को नहीं सिखाना है ....यह मेरे भेद नहीं है । मतभेद बिलकुल नहीं है । तो बस यह छोटी सी कहानी थी मेरी फिलहाल डिटेल में तो पता नहीं बहुत कुछ है ।

र० वा० :- अपने शागिर्दों के बारे में बताएँ कौन है ऐसा जिनके बारे में सोचकर आपको लगता है कि कुछ करेंगे ?

बि० म० :- शागिर्दों में ऐसा है कि अब तुम हो इतने अर्से से । किसी भी अच्छे खानदान की लड़की के नाम से तो हम कहेंगे यही कि **शाश्वती** लगी हुई हैं । 15-20 साल से और कुछ दिन पहले मैंने ये कहा कि उनके अंदर रंग अब शुरू हुआ है । वैसे विदेशियों में **वैरोनिक** भी तरक्की

कर रही है । उधर **फिलिप** **मेक्लीन टॉक** था ।...वह चला गया बहुत अच्छा ।.. वह इस वक्त अच्छा होता । ... लाजवाब । उसकी फिर तमन्ना है फिर आके सीखे मुझसे । बाकी **तीरथ प्रताप**, **प्रदीप** ये लोग नाम किये हैं लेकिन इन लोगों को बड़ी जल्दी तसल्ली हो गयी कि काम मिल गया अब हम कमाने लगे हैं । अब इतनी परफारमेंस कर लो । तालियाँ ले लो पैसे मिल जायेंगे, बात ख़त्म हो गई । कला के लिए सच्चे दिल से परेशान होने वाले बहुत कम लोग रहते हैं जो कि उसे आगे बढ़ाएँ । बहुत कम हैं । तो अब लड़कियों में तरक्की करने वाली सामने आने वालियों में शाश्वती हैं ही । **दुर्गा** भी अच्छी तरक्की कर रही है । ये छोटी सी फैमिली की लड़की है, अच्छी स्थिति घर की नहीं है पर उसका मन नाच के साथ जुड़ा हुआ है । अब सीखने को तो बहुत से लोग अभी भी सीख ही रहे हैं । और लड़कों में, जितना बढ़ना चाहिए **कृष्णमोहन, राममोहन** को उतना ध्यान नहीं है । यहाँ तक कि मेरे बेटे भी ध्यान नहीं देते । उस तरह का ध्यान नहीं देते जैसे कि मेरी कहानी आपने सुनी है । इन लोगों ने कभी ये नहीं सोचा कि हाँ भैया ने कहा

है – हुक्म दे दिया है तो हम दो साल तक कुछ नहीं सोचेंगे । बस यही सोचेंगे । उस तरह का त्याग नहीं है । उतनी शक्ति ही नहीं है । मौज लेते हैं । नाचते हैं तो उसे भी एक एन्जॉय सोचकर कर लेते हैं । क्योंकि देश विदेश तो मैं बहुत गया । जर्मनी, जापान, हांगकांग, लाओस, बर्मा ।

र० वा० :- इतनी बार आप गये तो कोई खास बात आपको याद आती है....कोई विशेष आयोजन जिससे आपको लगे कि हम....

बि० म० :- हाँ क्यों नहीं। जैसे लंदन फेस्टीवल तो एक बहुत ही जरूरी था । और एक दफा अमेरिका में दो चार जगहें वहाँ भी कामगी हॉल में हम नाचे थे ।...बड़े अच्छे लोग थे । एक जगह एक लड़का ।...आँखें उसकी फटी हुई एकदम अंदर आया हाँफते और काँपते हुए । मैंने सोचा जाने क्या हुआ उसको तो मैंने कहा मेरे साथ फोटो खिंचाना है क्या तुम्हें । यस-यस अब बेचारा बेहाल हो गया । अब लड़का तक बेहाल हो नाच देखकर तो यह जरा मजेदार बात है । पाकिस्तान में कोई खातून थीं पूरे हॉल में उनकी ही आवाज आए सुभान अल्लाह । मतलब मेरे नाच के आशिक तो बहुत हैं । मेरे आशिक भी हैं । मगर....मैं नाच की वजह से हूँ । ...इसलिए आशिक तो नाच के ही होते हैं । मैं तो बेचारा उसका असिस्टेंट हूँ । उस नाचने वाले का ।

उसके बाद से तो खैर धीरे-धीरे दिल्ली में स्कूटर भी खरीदा; फिर चला नहीं; हम लड़ गए खम्भे में अपने आप ही । फिर डर के मारे मोटर खरीदी पुरानी । दो चार दफे पुरानी खरीदी । फिर बैंक से लोन लेकर नई एम्बेसेडर । फिर उसको बेचकर नई फियेट खरीदी । अब दूसरी फियेट है । अब तो ईश्वर की कृपा से काफी सुविधा है । काफी कृपा है उनकी । लोग प्यार करते हैं मुझे बहुत । और मैं उस प्यार की वजह से ही इतना बढ़ा हूँ । क्योंकि....

र० वा० :- आपको आगे बढ़ाने में अम्मा जी का बहुत हाथ है ?

बि० म० :- अम्मा जी का बहुत बड़ा हाथ है । अम्मा जी ने तो शुरू से उन बुजुर्गों की तारीफ कर करके मेरे सामने हरदम कि बेटा वो ऐसे थे । उनको कम से कम इतना नाम तो याद था उन बुजुर्गों का । अभी आप दूसरे किसी से पूछें घर में तो उन्हें नाम भी नहीं मालूम था कि कौन थे । चाची (शंभू महाराज की पत्नी) से आप पूछें महाराज बिन्दादीन के बाद पहले और कौन थे तो उनको नहीं मालूम । ठुमरियाँ भी मैंने उनसे सीखीं । मेरी वाकई में गुरुवाइन थीं; वो माँ तो थीं ही । गुरुवाइन भी । और जब भी मैं नाचता था तो सबसे बड़ा एक्जामिनर या जज अम्मा को समझता था । जब भी वो नाच देखती थीं तो मैं कहता था उनसे कि मैं कहीं गलत तो नहीं कर

रहा हूँ। मतलब बाबूजी वाला ढंग है न। कहीं गड़बड़ी तो नहीं हो रही। तो कहतीं नहीं बेटा नहीं। उन्हीं की तस्वीर हो। पर बैले वैले यह तो मेरा नया क्रियेशन है। वो हरदम ऐसे ही कहती रहीं और लखनऊ के जो बुजुर्ग थे उनसे भी गवाही ली मैंने। चेंज तो नहीं लग रहा है। "नहीं बेटा वही ढंग है। और तुम्हारा शरीर वगैरह टोटल ढंग वैसा ही है। बैठने का, उठने का, बात करने का। मतलब जैसा था उनका।

बस यही....

और जगहें तो बहुत थीं आने जाने की। हम बहुत लोकप्रिय हैं बंबई में, कलकत्ता में, साउथ के लोग भी अब बहुत चाहते हैं मुझे और हर डांसर के लिए चाहे थोड़ी देर के लिए गलत शब्द इस्तेमाल कर ले। पर दिल से अगर आप पूछेंगे कि ईमानदारी से बताओ तो दूसरा शब्द इस्तेमाल नहीं करेगा। वह यही कहेगा वो अच्छे हैं। मतलब अगर ईमानदारी से कहेंगे तो। और प्रोफेशनल जहाँ आता है तो चार जगह बुराई करेंगे कि उन्हें क्या आता है वो तो ऐसे ही बेकार आदमी हैं। तो मुझे मालूम है इस चीज का। मुझे कोई द्वेष नहीं है शुरू से किसी के बारे में। जो करता है बढ़िया करता है (बस मैं अपना बुरा नहीं चाहूँगा) बस यही खास आदत है।

र० वि० :- आपको मंच पर कुछ अनुभव या संस्मरण बचपन के या ऐसे अनुभव जो याद आते हों ?

बि० म० :- अब नाचे तो हम बहुत ज्यादा हैं। इतना कि गिनती करना मुश्किल है। और उस जमाने से। रामपुर नवाब के महल में भी नाचा हूँ...नेपाल महाराज के यहाँ भी नाचा हूँ...और जमींदारों के यहाँ भी नाचा हूँ...जहाँ का मैं अक्सर तमाशा सुनाता रहता हूँ...कि जहाँ महफिल भी लगी है कि लड़का नाचेगा....जरा चारों तरफ थोड़ा खिसककर जगह बनाओ...तो सब खिसक जायें. ...तो नीचे गलीचा...गलीचे पर चाँदनी और चाँदनी गलीचे के नीचे जमीन पर कहीं पर गड्ढे हैं कहीं पर खाँचा है...मतलब यह सब नहीं....कौन परवाह करे। आजकल हमारे नये डांसर हैं कि स्टेज बड़ा खराब है....बड़ा टेढ़ा है....बड़ा गड्ढा है। हम लोगों को यह सब सोचने का कहाँ मौका मिलता था। अब गर्मी के दिनों में जरा सोचो न एयर कंडीशन; न कुछ वो बड़े-बड़े पंखे लेकर जो नौकर चाकर थे, वो हाँकते रहते थे। उनसे भी हाथ बचाना पड़ता था। नाचने में उससे न लड़ जायें कहीं। दूसरे कि गैस लाइट जल रही है उसकी भी गर्मी।

र० वि० :- अक्सर रात में होते थे...या दिन में भी होते थे प्रोग्राम ?

बि० म० :- दिन में भी होते थे। भैरवी का प्रोग्राम जो कहा जाता था यह कायदा था कि रात को डेढ़ दो बजे तक तो चलता था नाच वाच। उसमें थोड़ा भाव गीत वगैरह हुआ तो हुआ ठुमरी भाव पर विशेष दूसरे दिन दस बजे की महफिल। सुबह दस बजे से चार बजे तक भैरवी का एक प्रोग्राम कहलाता था। तो उससे समापन होता था। माने टोटल प्रोग्राम। याने डांसर आया है तो सुबह से लेकर शाम तक.....

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. लखनऊ और रामपुर से बिरजू महाराज का क्या संबंध है ?
2. रामपुर के नवाब की नौकरी छूटने पर हनुमान जी को प्रसाद क्यों चढ़ाया ?
3. नृत्य की शिक्षा के लिए पहले-पहल बिरजू महाराज किस संस्था से जुड़े और वहाँ किनके सम्पर्क में आए ?
4. किनके साथ नाचते हुए बिरजू महाराज को पहली बार प्रथम पुरस्कार मिला ?
5. बिरजू महाराज के गुरु कौन थे ? उनका संक्षिप्त परिचय दें ।
6. बिरजू महाराज ने नृत्य की शिक्षा किसे और कब देनी शुरू की ?
7. बिरजू महाराज के जीवन में सबसे दुखद समय कब आया ? उससे संबंधित प्रसंग का वर्णन कीजिए ।
8. शंभु महाराज के साथ बिरजू महाराज के संबंध पर प्रकाश डालिए ।
9. कलकत्ते के दर्शकों की प्रशंसा का बिरजू महाराज के नर्तक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ?
10. संगीत भारती में बिरजू महाराज की दिनचर्या क्या थी ?
11. बिरजू महाराज कौन-कौन से वाद्य बजाते थे ?
12. अपने विवाह के बारे में बिरजू महाराज क्या बताते हैं ?
13. बिरजू महाराज की अपने शागिर्दों के बारे में क्या राय है ?
14. **व्याख्या करें -**

    (क) पाँच सौ रुपए देकर मैंने गण्डा बँधवाया ।

    (ख) मैं कोई चीज चुराता नहीं हूँ कि अपने बेटे के लिए ये रखना है, उसको सिखाना है ।

    (ग) मैं तो बेचारा उसका असिस्टेंट हूँ । उस नाचने वाले का ।
15. बिरजू महाराज अपना सबसे बड़ा जज किसको मानते थे ?
16. पुराने और आज के नर्तकों के बीच बिरजू महाराज क्या फर्क पाते हैं ?

पाठ के आस-पास

1. कथक क्या है ? उसकी प्रमुख विशेषताओं के बारे में विभिन्न स्रोतों से जानकारी प्राप्त करें ।
2. प्रमुख भारतीय नृत्य शैलियों के बारे में जानकारी इकट्ठी करें ।
3. **निम्नांकित विषयों के बारे में जानकारी इकट्ठी करें -**

    (क) हिन्दुस्तानी डांस अकादमी (ख) परन (ग) सोलो (घ) भारतीय कला केंद्र

    (ङ) बैले (च) मालती माधव (छ) कुमारसंभव (ज) सत्यजीत रे (झ) कपिला जी
4. पाठ में आई तीनों कविताओं के भावार्थ लिखें ।

भाषा की बात

1. काल रचना स्पष्ट करें –

(क) ये शायद 43 की बात रही होगी ।

(ख) यह हाल अभी भी है ।

(ग) उस उम्र में न जाने क्या नाचा रहा होऊँगा ।

(घ) अब पचास रुपए में रिक्शे पर खर्च करता तो क्या बचता, और ट्यूशन में नागा हो तो पैसा अलग काट लेते थे ।

(ङ) पचास रुपए में काम करके किसी तरह पढ़ता रहा मैं ।

2. अर्थ की रक्षा करते हुए वाक्य की बनावट बदलें –

(क) चौदह साल की उम्र में, जब मैं वापस लखनऊ आया फेल होकर, तब कपिला जी अचानक लखनऊ पहुँचीं मालूम करने कि लड़का जो है वह कुछ करता भी है या आवारा या गिरहकट हो गया, वह है कहाँ ।

(ख) वह तीन साल मैंने खूब रियाज किया, मतलब यही सोचकर कि यही टाइम है अगर कुछ बढ़ना है तो अंधेरा कमरा करके किया करता था जब बाद में थक जाऊँ मैं तो जो भी साज हाथ आए कभी सितार, कभी गिटार, कभी हारमोनियम लेकर बजाऊँ मतलब रिलैक्स होने के लिए ।

3. पाठ से ऐसे दस वाक्यों का चयन कीजिए जिससे यह साबित होता हो कि ये वाक्य आमने-सामने बैठे व्यक्तियों के बीच की बातचीत के हैं, लिखित भाषा के नहीं ।

4. निम्नलिखित वाक्यों से अव्यय का चुनाव करें –

(क) जब अंडा कहकर पूछें तो नहीं खाता था, पर जब मूंग की दाल कहें तो बड़े मजे से खा लेता था ।

(ख) एक सीताराम बागला करके लड़का था अमीर घर का ।

(ग) बिलकुल पैसा नहीं था घर में कि उनका दसवाँ किया जा सके ।

(घ) फिर जब एक साल हो गया तो कहने लगे कि अब तुम परमानेंट हो गए ।

शब्द निधि

क्रोड़स्थ : गोद या अंक में स्थित

हलकारे : संदेशवाहक, कारिंदा

साफा : साफ लंबा वस्त्र जिसे नर्तक कंधे से लेकर कमर तक लपेट लेता है

अचकन : पोशाक विशेष

मेजरमेंट : नाप, माप

मस्का : मक्खन (मस्का लगाना या मक्खन लगाना मुहावरा भी है)

परन : तबले के वे बोल जिन पर नर्तक नाचता और ताल देता है

बंदिश : ठुमरी या अन्य प्रकार के गायन के बोल, स्थायी

दाल का चिल्ला : उबले हुए दाल को मसलकर बनाया गया व्यंजन

गण्डा बाँधना : दीक्षित करना, शिष्य स्वीकार करना

BDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

नजराना : भेंट, उपहार, गुरुदक्षिणा
नागा : अनुपस्थित, हाजिर नहीं होना, गायब रहना
गिरहकट : पैंतरेबाज, गाँठ काट लेनेवाला, पाकेटमार विशेष
परमानेंट : स्थायी
चरण : छंद की एक इकाई
टुकड़े : किसी पद की पंक्ति
तिहाइयाँ : तीसरे हिस्से
बैले : यूरोपीय नृत्य विशेष जिसमें कथानक, भावाभिनय और नृत्य तीनों शामिल होते हैं
अरसा : समय, अवधि
गलीचा : फर्श या बिस्तर जो नरम हो
मिजराब : सितार बजाने का एक तरह का छल्ला
लहरा : छन्दमय आरोही गति जो भावप्रसंग के साथ हो
शागिर्द : शिष्य
लाजवाब : जिसका जवाब न हो, अद्वितीय, अनुपम

□□□

अशोक वाजपेयी

अशोक वाजपेयी का जन्म 16 जनवरी 1941 ई० में दुर्ग, छत्तीसगढ़ में हुआ, किंतु उनका मूल निवास सागर, मध्यप्रदेश है । उनकी माता का नाम निर्मला देवी और पिता का नाम परमानंद वाजपेयी है । उनकी प्रारंभिक शिक्षा गवर्नमेंट हायर सेकेंड्री स्कूल, सागर से हुई । फिर सागर विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० और सेंट स्टीफेंस कॉलेज, दिल्ली से अंग्रेजी में एम० ए० किया । उन्होंने वृत्ति के रूप में भारतीय प्रशासनिक सेवा को अपनाया । वे भारतीय प्रशासनिक सेवा के कई पदों पर रहे और महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति पद से सेवानिवृत्त हुए । संप्रति, वे दिल्ली में भारत सरकार की कला अकादमी के निदेशक हैं ।

अशोक वाजपेयी की लगभग तीन दर्जन मौलिक और संपादित कृतियाँ प्रकाशित हैं । 'शहर अब भी संभावना है', 'एक पतंग अनंत में', 'तत्पुरुष', 'कहीं नहीं वहीं', 'बहुरि अकेला', थोड़ी सी जगह', 'दुख चिट्ठीरसा है' आदि उनके कविता संकलन हैं । 'फिलहाल, 'कुछ पूर्वग्रह', 'समय से बाहर', 'कविता का गल्प', 'कवि कह गया है' आदि उनकी आलोचना की पुस्तकें हैं । उनके द्वारा संपादित पुस्तकों की सूची भी लंबी है - 'तीसरा साक्ष्य', 'साहित्य विनोद', 'कला विनोद', 'कविता का जनपद', मुक्तिबोध, शमशेर और अज्ञेय की चुनी हुई कविताओं का संपादन आदि । उन्होंने कई पत्रिकाओं का भी संपादन किया है जिनमें 'समवेत', 'पहचान', 'पूर्वग्रह', 'बहुवचन', 'कविता एशिया', 'समास' आदि प्रमुख हैं । अशोक वाजपेयी को साहित्य अकादमी पुरस्कार, दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान, फ्रेंच सरकार का ऑफिसर आव् द आर्डर आव् क्रॉस 2004 सम्मान आदि प्राप्त हो चुके हैं ।

सर्जक साहित्यकार अशोक वाजपेयी द्वारा रचित प्रस्तुत पाठ में एक संश्लिष्ट रचनाधर्मिता की अंतरंग झलक है । यह पाठ उनके 'आविन्यों' नामक गद्य एवं कविता के सर्जनात्मक संग्रह से संकलित है । इसी नाम के संग्रह में उनकी सर्जनात्मक गद्य की कुछ रचनाएँ और कविताएँ हैं जिनमें से दोनों विधाओं की दो रचनाओं के साथ पुस्तक की भूमिका भी किंचित संपादित रूप में यहाँ प्रस्तुत है । आविन्यों दक्षिणी फ्रांस का एक मध्ययुगीन ईसाई मठ है जहाँ लेखक ने बीस-एक दिनों तक एकांत रचनात्मक प्रवास का अवसर पाया था । प्रवास के दौरान लगभग प्रतिदिन गद्य और कविताएँ लिखी गईं । इस तरह हिंदी ही नहीं, भारत से भिन्न स्थान और परिवेश के एकांत प्रवास में एक निश्चित स्थान और समय से अनुबद्ध मानस के सर्जनात्मक अनुष्ठान का साक्षी यह पाठ एक वैश्विक जागरूकता और संस्कृतिबोध से परिपूर्ण रचनाकार के मानस की अंतरंग झलक पेश करते हुए यह दिखाता है कि रचनाएँ कैसे रूप-आकार ग्रहण करती हैं । कोई भी रचना महज एक शब्द व्यवस्था भर नहीं होती, उसकी निर्माण प्रक्रिया में रचनाकार की प्रतिभा, उसके जटिल मानस के साथ स्थान और परिवेश की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है ।

आविन्यों

लगभग दस बरस पहले पहली बार आविन्यों गया था । दक्षिण फ्रांस में रोन नदी के किनारे बसा एक पुराना शहर है जहाँ कभी कुछ समय के लिए पोप की राजधानी थी और अब गर्मियों में फ्रांस और यूरोप का एक अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय रंग-समारोह हर बरस होता है। उस बरस वहाँ भारत केन्द्र में था । पीटर ब्रुक का विवादास्पद 'महाभारत' पहले पहल प्रस्तुत किया जानेवाला था और उन्होंने मुझे निमंत्रण भेजा था । पत्थरों की एक खदान में, आविन्यों से कुछ मिलोमीटर दूर, वह भव्य प्रस्तुति हुई थी: सच्चे अर्थों में महाकाव्यात्मक । कुछ दिनों और ठहरा रहा था - कुमार गन्धर्व आए थे और उन्होंने एक आर्कबिशप के पुराने आवास के बड़े से आँगन में गाया था । एक बन्दिश भी याद है : द्रुमद्रुम लता-लता । इस समारोह के दौरान वहाँ के अनेक चर्च और पुराने स्थान रंगस्थलियों में बदल जाते हैं ।

रोन नदी के दूसरी ओर आविन्यों का एक और हिस्सा है जो लगभग स्वतन्त्र है । नाम है वीलनव्व ल आविन्यों- अर्थात् आविन्यों का नया गाँव या शायद कहना चाहिए नई बस्ती । वहाँ दरअसल फ्रेंच शासकों ने पोप की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए किला बनवाया था । उसी में कार्थूसियन सम्प्रदाय का एक ईसाई मठ बना ला शत्रूज़ । चौदहवीं सदी से फ्रेंच क्रांति तक उसका धार्मिक उपयोग होता रहा । यह सम्प्रदाय मौन में विश्वास करता है सो सारा स्थापत्य एक तरह से मौन का ही स्थापत्य था । क्रांति होने पर इस स्थान और उसकी सभी इमारतों पर साधारण लोगों ने कब्जा कर लिया और वे उसमें रहने लगे । इस सदी की शुरुआत में तो ला शत्रूज़ के जीर्णोद्धार की शुरुआत हुई और धीरे-धीरे अधिकांश पुराने स्थानों और

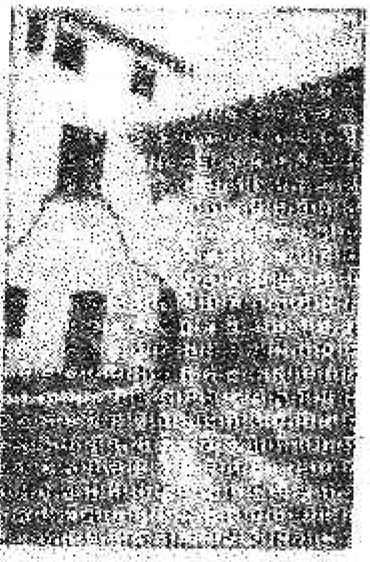

इमारतों को वापस खरीद कर उनका बहुत सम्वेदनशील और सुघर जीर्णोद्धार कर उन्हें यथासंभव पहले जैसा करने की सफल कोशिश की गई। उसे एक संरक्षित स्मारक बनाए रखकर भी उसमें एक कलाकेन्द्र की स्थापना की गई। यह केन्द्र इन दिनों रंगमंच और लेखन से जुड़ा हुआ है। रंगकर्मी, रंगसंगीतकार, अभिनेता, नाटककार आदि यहाँ आते हैं और पुराने ईसाई सन्तों के चेम्बर्स में कुछ अवधि के लिए रहकर सारा समय अपना रचनात्मक काम करने में बिताते हैं। दो-दो कमरों के चेम्बर सुसज्जित हैं। उसमें फर्नीचर चौदहवीं सदी जैसा है पर सर्वथा आधुनिक रसोईघर और नहानघर हैं। एक अत्याधुनिक संगीत व्यवस्था भी है। चेम्बरों के मुख्य द्वार कब्रगाह के चारों ओर बने गलियारों में खुलते हैं पर पीछे आँगन भी है और पिछवाड़े से एक दरवाजा भी। सप्ताह के पाँच दिनों में शाम को सबको एक स्थान पर रात का भोजन करने की सुविधा है; बाकी हर दिन का नाश्ता और दोपहर का भोजन अपनी सुविधा से, जहाँ चाहे वहाँ, अपने ही चेम्बर में खुद बनाकर। दिन में औसतन पचासेक सैलानी यह जगह देखने आते हैं। अन्यथा बेहद शान्त और नीरव स्थान है।

वीलनव्व एक छोटा सा गाँव है जहाँ एक पुस्तकों-पत्रिकाओं की दुकान, एक डिपार्टमेंटल स्टोर, एक कब्रगाह, कई रेस्तराँ और बार आदि हैं। आविन्यों और आस-पास के अन्य शहरों-कस्बों से बस-व्यवस्था सुलभ है।

फ्रेंच सरकार के सौजन्य से ला शत्रूज़ में रहकर अपना कुछ काम करने का एक न्यौता मुझे पिछली गर्मियों में मिला था। तब नहीं जा पाया था। यों अवधि तो एक महीने की थी पर इतना समय निकालना कठिन था। सो कुछ उन्नीस दिन वहाँ रहा, 24 अक्टूबर से 10 नवम्बर 1994 की दोपहर तक। अपने साथ हिन्दी का टाइपराइटर, तीन-चार पुस्तकें और कुछ संगीत के टेप भर ले गया था। सिर्फ अपने में रहने और लिखने के अलावा प्रायः कुछ और करने की कोई विवशता न होने का जीवन में यह पहला ही अवसर था। इतने निपट एकान्त में रहने का

भी कोई अनुभव नहीं था । कुल उन्नीस दिनों में पैंतीस कविताएँ और सत्ताईस गद्य रचनाएँ लिखी गईं ।

आविन्यों फ्रांस का एक प्रमुख कलाकेन्द्र रहा है । पिकासो की विख्यात कृति का शीर्षक है 'ल मादामोजेल द आविन्यों' । कभी अति यथार्थवादी कवित्रयी आन्द्रे ब्रेताँ, रेने शॉ और पाल एलुआर ने मिलकर लगभग तीस संयुक्त कविताएँ आविन्यों में साथ रहकर लिखी थीं । ला शत्रूज़ के निदेशक ने जब इस पुस्तक की सामग्री देखी थी तो उन्हें इतनी अल्पावधि में इतने काम पर अचरज हुआ था । अचरज मुझे भी कम नहीं है । वे सुन्दर, निविड़, सघन, सुनसान दिन और रातें थीं: श्रय, पवित्रता और आसक्ति से भरी हुई । यह पुस्तक उन सबकी स्मृति का दस्तावेज है । आविन्यों को, उसी के एक मठ में रहकर लिखी गई, कविप्रणति भी । हर जगह हम कुछ पाते, बहुत सा गँवाते हैं । ला शत्रूज़ में जो पाया उसके लिए गहरी कृतज्ञता मन में है और जो गँवाया उसकी गहरी पीड़ा भी ।

प्रतीक्षा करते हैं पत्थर

किसी देवता या काल की नहीं
पता नहीं किसकी प्रतीक्षा करते हैं पत्थर–
धीरज से
रेशा-रेशा झिरते हुए,
शिरा-शिरा छिलते हुए,
प्रतीक्षारत रहते हैं पत्थर ।
मेंह गिरता है, सूखी पत्तियाँ, धूप गिरती है,
गिरती हैं आवाजें,
भाँय-भाँय करता रात का बियाबान और अँधेरा–
अपने अभेद्य हृदय में
कोई प्राचीन धुन दुहराते हुए,
प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं पत्थर ।
हरे सपने भूरी पहेलियाँ पीला पड़ता समय
छीजती भाषा आदिम अँधेरा
सब घेरता है पत्थरों को–
पर अपलक बाट अगोरते
एक बेहद्दी चौगान में खड़े रहते हैं पत्थर ।
बिना माथा झुकाये प्रार्थना करते हैं पत्थर,
बिना पसीजे कामना करते हैं पत्थर,
बिना शब्द कविता लिखते हैं पत्थर ।
पता नहीं किसकी प्रतीक्षा करते हैं पत्थर–

नदी के किनारे भी नदी है

यहाँ पास में ही रोन नदी है । इस तरफ वीलनव्व और दूसरी ओर आविन्यों । अभी नहीं, पर पिछले वर्ष हम बहुत देर तक उसके तट पर बैठे थे । अगर जलप्रवाह को एकटक देखते रहो तट पर बैठे तो कई बार लगता है कि जल स्थिर है और तट ही बह रहा है । नदी तट पर बैठना भी नदी के साथ बहना है: कई बार नदी स्थिर होती है, हम तट पर बैठे रहते हैं । नदी के पास होना नदी होना है । विनोद कुमार शुक्ल अपनी एक कविता में 'नदी-चेहरा लोगों' से मिलने जाने की बात कहते हैं । शायद सिर्फ नदी किनारे रहने वाले ही नदी-चेहरा नहीं हो जाते, हम जो कभी-कभार और थोड़ी देर के लिए नदी किनारे जा-बैठ पाते हैं हम भी कुछ देर के लिए ही सही, नदी-चेहरा हो जाते हैं । नदी किसी को अनदेखा नहीं करती: वह सबको भिंगोती है, अपने साथ करती है । थोड़ी सी देर के लिए भी गए नदी की बिरादरी में शामिल हो जाते हैं ।

नदी के समान ही कविता सदियों से हमारे साथ रही है । उसमें न जाने कहाँ-कहाँ से जल आकर मिलते और विलीन होते रहते हैं: वह सागर में समाहित होती रहती है हर दिन ही, पर उसमें जल का टोटा नहीं पड़ता । कविता में भी न जाने कहाँ से कैसी-कैसी बिम्बमालाएँ, शब्द भंगिमाएँ, जीवन छवियाँ और प्रतीतियाँ आकर मिलती और तदाकार होती रहती हैं । जैसे नदी जल-रिक्त नहीं होती, वैसे ही कविता शब्द-रिक्त नहीं होती । न नदी के किनारे, न ही कविता के पास हम तटस्थ रह पाते हैं: अगर हम खुलेपन से गए हैं तो हम उसकी अभिभूति से बच नहीं सकते । नदी और कविता में हम बरबस ही शामिल हो जाते हैं । जैसे हमारे चेहरों पर नदी की आभा आती है, वैसे ही हमारे चेहरों पर कविता की चमक । निरन्तरता, नदी और कविता दोनों में हमारी नश्वरता का अनन्त से अभिषेक करती है ।

एक कविता-पंक्ति है: ''कैसी तुम नदी हो ?'' उत्तर हो सकता है: ''जैसी तुम कविता हो !''

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. आविन्यों क्या है और वह कहाँ अवस्थित है ?
2. हर बरस आविन्यों में कब और कैसा समारोह हुआ करता है ?
3. लेखक आविन्यों किस सिलसिले में गए थे ? वहाँ उन्होंने क्या देखा-सुना ?
4. ला शत्रूज़ क्या है और वह कहाँ अवस्थित है ? आजकल उसका क्या उपयोग होता है ?
5. ला शत्रूज़ का अंतरंग विवरण अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि लेखक ने उसके स्थापत्य को 'मौन का स्थापत्य' क्यों कहा है ?
6. लेखक आविन्यों क्या साथ लेकर गए थे और वहाँ कितने दिनों तक रहे ? लेखक की उपलब्धि क्या रही ?
7. 'प्रतीक्षा करते हैं पत्थर' शीर्षक कविता में कवि क्यों और कैसे पत्थर का मानवीकरण करता है ?
8. आविन्यों के प्रति लेखक कैसे अपना सम्मान प्रदर्शित करते हैं ?
9. मनुष्य जीवन से पत्थर की क्या समानता और विषमता है ?
10. इस कविता से आप क्या सीखते हैं ?
11. नदी के तट पर बैठे हुए लेखक को क्या अनुभव होता है ?
12. नदी तट पर लेखक को किसकी याद आती है और क्यों ?
13. नदी और कविता में लेखक क्या समानता पाता है ?
14. किसके पास तटस्थ रह पाना संभव नहीं हो पाता और क्यों ?

पाठ के आस-पास

1. स्कूल के पुस्तकालय से अशोक वाजपेयी की पुस्तक 'आविन्यों' खोजकर पढ़ें ।
2. **निम्नांकित व्यक्तियों के बारे में जानकारी एकत्र करें -**
   (क) रूपर्ट ब्रूक (ख) पिकासो (ग) आन्द्रे ब्रेताँ (घ) रेने शाँ (ङ) पॉल एलुआर (च) कुमार गंधर्व
3. फ्रांस का मानचित्र उपलब्ध कर रोन नदी और आविन्यों मठ को चिह्नित करें ।

भाषा की बात

1. **निम्नांकित के लिंग-निर्णय करते हुए वाक्य बनाएँ –**
   खदान, आबास, बन्दिश, इमारत, रंगकर्मी, अवधि, नहानघर, आँगन, आसक्ति, प्रणति

2. निम्नांकित के समास-विग्रह करते हुए भेद बताएँ –

यथासंभव, पहले-पहल, लोकप्रिय, रंगकर्मी, पचासेक, कवित्रयी, कविप्रणति, प्रतीक्षारत, अपलक, तदाकार

3. पाठ से अहिन्दी स्रोत के शब्द एकत्र कीजिए ।

4. निम्नलिखित शब्दों के वचन बदलें –

रंगकर्मी, कविताएँ, उसकी, सामग्री, अनेक, सुविधा, अवधि, पीड़ा, पत्तियाँ, यह

शब्द निधि :

महाकाव्यात्मक : महाकाव्य की तरह व्यापक और गहरा
रंगस्थल : जहाँ नाटक मंचित हो
द्रुम : पेड़-पौधा
स्थापत्य : वास्तु-रचना, भवन-निर्माण की कला
जीर्णोद्धार : पुराने को नया करना
सुघर : सुंदर
चैम्बर्स : प्रकोष्ठ, कमरे
नीरव : शब्दहीन, ध्वनिहीन
निपट : नंगा, निरा, स्पष्ट
निविड़ : घना, सघन
आसक्ति : गहरा भावात्मक लगाव
दस्तावेज : ऐसे कागजात जिनमें किसी वस्तु का सारा विवरण हो
कविप्रणति : कवि का कृतज्ञतापूर्ण प्रणाम
बियाबान : निर्जन, सुनसान
बेहद्दी चौगान : सीमाहीन खुला मैदान
तदाकार : किसी वस्तु के आकार में ढल जाना
अभिभूति : पराजय, अत्यंत प्रभावित होना
नश्वरता : भंगुरता, नाशशीलता

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

❑❑❑

विनोद कुमार शुक्ल

विनोद कुमार शुक्ल का जन्म 1 जनवरी 1937 ई० में राजनाँदगाँव, छत्तीसगढ़ में हुआ। उन्होंने वृत्ति के रूप में प्राध्यापन को अपनाया। वे इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर थे। वे दो वर्षों (1994-1996 ई०) तक निराला सृजनपीठ में अतिथि साहित्यकार भी रहे। उनका पहला कविता संग्रह 'लगभग जयहिंद' पहचान सीरीज के अंतर्गत 1971 में प्रकाशित हुआ। उनके अन्य कविता संग्रह हैं - 'वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह', 'सबकुछ होना बचा रहेगा' और 'अतिरिक्त नहीं'। उनके तीन उपन्यास - 'नौकर की कमीज', 'खिलेगा तो देखेंगे' और 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' तथा दो कहानी संग्रह - 'पेड़ पर कमरा' और 'महाविद्यालय' भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों का कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इतालवी भाषा में उनकी कविताओं एवं एक कहानी संग्रह 'पेड़ पर कमरा' का अनुवाद हुआ है। 'नौकर की कमीज' उपन्यास पर मणि कौल द्वारा फिल्म का भी निर्माण हुआ है। विनोद कुमार शुक्ल को 1992 ई० में रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार, 1997 ई० में दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान और 1990 ई० में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

बीसवीं शती के सातवें-आठवें दशक में विनोद कुमार शुक्ल एक कवि के रूप में सामने आए थे। कुछ ही समय बाद उसी दौर में उनकी दो-एक कहानियाँ भी सामने आई थीं। धारा और प्रवाह से बिल्कुल अलग, देखने में सरल किंतु बनावट में जटिल अपने न्यारेपन के कारण उन्होंने सुधीजन का ध्यान आकृष्ट किया था। यह खूबी भाषा या तकनीक पर निर्भर नहीं थी। इसकी जड़ें संवेदना और अनुभूति में थीं और यह भीतर से पैदा हुई खासियत थी। तब से लेकर आज तक वह अद्वितीय मौलिकता अधिक स्फुट, विपुल और बहुमुखी होकर उनकी कविता, उपन्यास और कहानियों में उजागर होती आयी है।

प्रस्तुत कहानी कहानियों के उनके संकलन 'महाविद्यालय' से ली गयी है। कहानी बचपन की स्मृति के भाषा-शिल्प में रची गयी है और इसमें एक किशोर की वय:संधिकालीन स्मृतियाँ, दृष्टिकोण और समस्याएँ हैं। कहानी एक छोटे शहर के निम्न मध्यवर्गीय परिवार के भीतर के वातावरण, जीवन यथार्थ और संबंधों को आलोकित करती हुई लिंग-भेद की समस्या को भी स्पर्श करती है। घटनाएँ, जीवन प्रसंग आदि के विवरण एक बच्चे की आँखों देखे हुए और उसी के मितकथन से उपजी सादी भाषा में हैं। कहानी का समन्वित प्रभाव गहरा और संवेदनात्मक है। कहानी अपनी प्रतीकात्मकता के कारण मन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ती है।

BIEL SOLUTION ABSOL PATNA

मछली

दौड़ते हुए हम लोग एक पतली गली में घुस गए । इस गली से घर नजदीक पड़ता था। दूसरे रास्तों में बहुत भीड़ थी । बाजार का दिन था । लेकिन बूँदें पड़ने से भीड़ के बिखराव में तेजी आ गई थी ।

दौड़ इसलिए रहे थे कि डर लगता था कि मछलियाँ बिना पानी के झोले में ही न मर जाएँ । झोले में तीन मछलियाँ थीं । एक तो उसी वक्त मर गई थी जब पिताजी खरीद रहे थे । दो जिन्दा थीं । झोले में उनकी तड़प के झटके मैं जब तब महसूस करता था । मन ही मन सोच रहा था कि एक मछली पिताजी से जरूर माँग लेंगे । फिर उसे कुएँ में डालकर बहुत बड़ी करेंगे। जब मन होगा बाल्टी से निकालकर खेलेंगे । बाद में फिर कुएँ में डाल देंगे ।

अब जोर से पानी गिरने लगा था । बरसते पानी में खड़े होकर झोले का मुँह आकाश की तरफ फैलाकर मैंने खोल दिया ताकि आकाश का पानी झोले के अन्दर पड़ी मछलियों पर पड़े। उनमें थोड़ी जान आ जाए । संतू भीगने से बचने के लिए एक मकान के नीचे खड़ा हो गया था। हम दोनों बुरी तरह भीग गए थे । तभी कोई मछली पानी के छींटे पाकर, कहीं आसपास किसी तालाब, या नदी का अंदाजकर जोर से उछली । झोला मेरे हाथ से छूटते-छूटते बचा ।

नहानघर का दरवाजा अंदर से हम लोगों ने बंद कर लिया था । भरी हुई बाल्टी थी, उसे आधी खाली कर मैंने झोले की तीनों मछलियाँ उड़ेल दीं । अगर बाल्टी भरी होती तो मछली उछलकर नीचे आ जाती । एक बार एक छोटी सी मछली मेरे हाथ से फिसलकर नहानघर की नाली में घुस गई थी । हाथों से मैंने और सन्तू ने टटोल टटोलकर ढूँढ़ा था । जब दिखी नहीं तो हम घर के पीछे जाकर खड़े हो गए थे जहाँ घर की नाली एक बड़ी नाली से मिलती थी । गंदे पानी में मछली दिखी नहीं । दीदी ने बताया था कि वह मछली इस नाली से शहर की सबसे बड़ी नाली में जाएगी फिर शहर से तीन मील दूर मोहारा नदी में चली जाएगी ।

संतू ठंढ से काँप रहा था । माँ हम लोगों को भीगा देखेगी तो मार पड़ेगी । मैंने संतू से कहा कि वह कमीज उतारकर निचोड़ ले । कमीज उतारकर हम दोनों ने निचोड़ी । पेंट को मुट्ठियों से दबादबाकर निचोड़ा । फिर हम दोनों केवल पेंट पहिने, गोद में गीली कमीज दबाये बाल्टी को घेरकर बैठ गए । जो सबसे नीचे दबी हुई मछली थी वही शायद मर गई थी ।

संतू से मैंने कहा "अपन ये सबसे ऊपर वाली मछली पिताजी से माँग लेंगे ।" संतू ने सिर हिलाकर कहा "अच्छा ।" वह बड़े प्यार से मछलियों की तरफ देख रहा था । वह मछलियों

को छूकर देखना चाहता था लेकिन डरता था। बाल्टी के थोड़ा और पास खिसककर एक मछली को पकड़ते हुए मैंने कहा, "संतू! तू भी छूकर देख न।"

"नहीं, काटेगी" संतू ने इनकार करते हुए कहा।

"मैं तो छू रहा हूँ। मुझे तो नहीं काटती। ये मछली नहीं काटती। ले छू।"

संतू ने डरते-डरते एक मछली को जो सबसे ऊपर थी उँगली से छुआ। फिर डरकर उसने अपना हाथ खींच लिया।

"डरता क्यों है?" कहकर एक मछली को मैंने उठा लिया। मछली मेरे हाथों से फिसली पड़ रही थी। मैंने उसे फिर बाल्टी में डाल दिया। बाल्टी में पड़ते ही वह उछली तो पानी के छींटे हम लोगों पर पड़े। तब संतू चौंककर थोड़ा पीछे हट गया था।

नीचे दबी हुई मछली की आँखों में मैं अपनी छाया देखना चाहता था। दीदी कहती थी जो मछली मर जाती है उसकी आँखों में झाँकने से अपनी परछाईं नहीं दिखती।

बाल्टी में हाथ डालकर मैंने मुर्दा सी पड़ी उस मछली को बाहर निकाला। नहानघर के फर्श पर उसे धीरे से रख दिया। उसकी पूँछ को पकड़कर दो-तीन बार हिलाया तो भी उस मछली में थोड़ी भी हरकत नहीं हुई। उसकी लंबी एक-एक बाल की मूछें छोर से छल्लेदार बन गई थीं। 'संतू! तू इसकी आँख में झाँक के देख तेरी परछाई इसमें दिखती है क्या?" मछली बाहर फर्श पर थी इसलिए संतू थोड़ी दूर हटकर बैठा था। मेरे यह कहने से कुछ पास आकर मछली की आँख में उत्सुकता से झाँकने लगा। "और पास से देख। परछाई दिखती है?" समझाते हुए मैंने उससे कहा "दीदी कहती है मरी मछली की आँख में आदमी की परछाई नहीं दिखती।" दूर से सिर झुकाये मछली की आँखों में झाँकता हुआ संतू चुपचाप था। कुछ बोलता ही नहीं था कि परछाई दिखती है या नहीं।

"तुझसे कुछ भी नहीं बनता" कहकर दोनों हाथों से मैंने मछली को उठा लिया। फिर मछली को अपने चेहरे के बिल्कुल पास लाकर मैंने देखा तो मुझे उसकी आँख में धुँधली-धुँधली परछाई दिखी। ठीक से समझ नहीं आ रहा था कि यह मेरी परछाई थी या मछली की आँखों का रंग ही ऐसा हो गया था।

"शायद थोड़ी जान है" "जाकर तू चुपके से दीदी को बुला ला।"

मैंने संतू से कहा। और मैंने मछली फिर से बाल्टी में डाल दी। थोड़ी देर बाद संतू लौटकर आया तो कहा "दीदी तो सो रही है।"

"अभी दिन को सो रही है।" मुझे आश्चर्य हुआ।

"माँ कहाँ है?"

"उस तरफ मसाला पीस रही है।"

मेरा दिल बैठ गया। "च; च; मछली के लिए मसाला होगा"

"आज ही बनेगी" दुःख से मैंने कहा।

"भइया ! मछली अभी कट जायेगी ?" भोलेपन से संतू ने पूछा ।

"हाँ ।"

फिर संतू भी उदास हो गया ।

घर में मछली काटने के लिए एक अलग से पाटा था । उस पाटे के ऊपर ही मछली रखकर काटी जाती थी । पाटे में चक्कू के आड़े-तिरछे निशान बन गए थे । यह पाटा परछी में ड्रम के पीछे रखा रहता था । जिस रोज मछली बनती थी उसी रोज यह पाटा निकाला जाता था । घर का नौकर मछली काटा करता था । पानी का गिरना बिल्कुल बंद हो गया था । आँगन में आकर मैंने देखा जिस जगह मछली काटी जाती थी वहाँ वही पाटा धुला हुआ रखा था । पास में थोड़ी चूल्हे की राख थी । मैंने सोचा भग्गू कुआँ के पास चक्कू में धार कर रहा होगा । नहानघर का दरवाजा पूरा खुला था । मुझे बाल्टी दिख रही थी जिसमें मछलियाँ थीं । माँ वहाँ नहीं थी । शायद ऊपर होगी । माँ को घर में मछली, गोश्त बनना अच्छा नहीं लगता था । पिताजी ने कई बार चाहा कि हम लोग भी मछली, गोश्त खाया करें लेकिन माँ ने सख्ती से मना कर दिया था । और किसी को अच्छा भी नहीं लगता था, केवल पिताजी खाते थे ।

भग्गू को जैसे मालूम था कि मछलियाँ नहानघर में हैं । आते ही वह अंगोछे में तीनों मछलियाँ निकाल लाया । कुएँ में मछली पालने का उत्साह बुझ-सा गया था । पिताजी शायद अभी तक आए नहीं थे । कमरे में जाकर देखा तो सच में दीदी करवट लिए लेटी थी । संतू को मैंने इशारे से बुलाया कि वह भी गीले कपड़े बदल ले । शायद कुछ आहट हुई होगी । दीदी ने पलटकर हमें देखा । गीले कपड़ों में देखकर दीदी बहुत नाराज हुई । फिर प्यार से समझाया । संतू को दीदी ने खुद अपने हाथों से जाने क्यों बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाए । मैं घर के धोए कपड़े पहिन रहा था तो दीदी ने कहा कि धोबी के धुले कपड़े पहिन लूँ । फिर दीदी ने पेटी से मेरे लिए कपड़े निकाल दिए । संतू के बड़े-बड़े बाल थे इसलिए अभी तक गीले थे । दीदी ने संतू के बालों को टावेल से पोंछकर, उनमें तेल लगाया । बायें हाथ से संतू की ठुड्डी पकड़कर दीदी ने उसके बाल सँवार दिए । जब दीदी संतू के बाल सँवार रही थी तो संतू अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से दीदी को टकटकी बाँधे देख रहा था । सभी कहते थे कि दीदी बहुत सुन्दर है ।

दीदी से मैंने कहा "दीदी ! आज मछली आई है । तीन हैं । एक शायद मर गई है । उन्हें अभी भग्गू काटेगा ।" पहले तो दीदी चुप रही फिर कहा कि मैं कमरे का दरवाजा बाहर से बंद कर दूँ । वह कमरे में अकेले लेटेगी । उसकी तबीयत ठीक नहीं है । मैं और संतू दोनों चुपचाप कमरे से बाहर निकल आए । जब मैं दरवाजा बंद कर रहा था, तो दीदी लेटी हुई थी ।

भग्गू के पीछे खंभे के पास टिककर हम दोनों मछली का कटना देखने लगे । भग्गू ने एक मछली उठाकर पहले उसे पत्थर पर कसकर दो तीन बार पटका, फिर मुर्दा सी मछली के पूरे शरीर में अच्छी तरह राख मली । पाटे के ऊपर रखकर एक दाब से उसकी गर्दन काट डाली । मछली थोड़ी भी नहीं तड़पी । तभी जाने क्यों मेरे देखते ही देखते संतू एक मछली अंगोछे से

उठाकर बाहर की तरफ सरपट भागा । भग्गू भी मछली काटना छोड़कर "अरे ! अरे ! अरे !" कहता हुआ उसके पीछे-पीछे भागा । मैं वहीं खड़ा रहा, पाटे में राख से लिपटी हुई सिर कटी हुई मछली पड़ी थी । अंगोछे में जो मछली लिपटी हुई सी थी उसका धीरे-धीरे लहरना मुझे साफ मालूम पड़ रहा था । मैंने सोचा संतू मुर्दा मछली लेकर भागा है ।

मुझे लगा कि दीदी के कमरे से दीदी की हल्की-हल्की सिसकियों की आवाज आ रही थी । धीरे से दरवाजा खोलकर मैं अंदर गया तो देखा कि दीदी सच में अपनी पहनी हुई साड़ी को सर तक ओढ़े, करवट लिए सिसक-सिसक कर रो रही थी । हिचकी लेते ही दीदी का पूरा शरीर सिहर उठता था । अंगोछे में लिपटी मछली का लहरना मुझे याद आया । वैसे ही धीरे से दरवाजा बंद कर मैं बाहर आ गया । भग्गू और संतू अभी तक नहीं थे । बाड़े की तरफ आकर मैंने देखा कि कुएँ के पास जमीन पर संतू जानबूझकर पट पड़ा था । दोनों हाथों से मछली को अपने पेट के पास छुपाए हुए था । भग्गू मछली छीनने की कोशिश कर रहा था । शायद उसे डर था कि संतू मछली कुएँ में डाल देगा तो पिताजी से उसे डाँट पड़ेगी । मैंने सुना कि अंदर की तरफ पिताजी के जोर-जोर से चिल्लाने की आवाज आ रही थी ।

तीनों मछलियों के कई टुकड़े हो गए थे । पाटे के पास मछलियों के गोल-गोल चमकीले पंख पड़े थे । दीदी जहाँ लेटी थी, उस कमरे का दरवाजा खुला था । शायद माँ अन्दर थी । पिताजी दरवाजे के पास गुस्से से टहल रहे थे । दीदी की सिसकियाँ बढ़ गई थीं । मुझे लगा कि पिताजी ने दीदी को मारा है ।

भग्गू जैसे ही बाहर जा रहा था तो पिताजी ने दहाड़कर कहा "भग्गू ! अगर नरेन घर में घुसे तो साले के हाथ पैर तोड़ बाहर फेंक देना । बाद में जो होगा मैं भुगत लूँगा ।"

भग्गू चुपचाप सिर हिलाकर चला गया । संतू सहमा-सहमा चुपचाप खड़ा था । कीचड़ से उसके साफ अच्छे कपड़े बिल्कुल खराब हो गए थे । बाल जिसे दीदी ने प्यार से सँवारा था उसमें भी बहुत मिट्टी लगी थी ।

नहानघर में जाकर मुझे लगा कि मछलियों की गंध आ रही है । बाल्टी के पास बैठकर मैंने पानी को हाथ से गोल-गोल खँगाला । फिर बाल्टी को उलट दिया तो नहानघर की नाली क्षणभर को पूरी भर गई, फिर बिल्कुल खाली हो गई । पूरे घर में मछलियों की जैसे गंध आ रही थी ।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. झोले में मछलियाँ लेकर बच्चे दौड़ते हुए पतली गली में क्यों घुस गए ?
2. मछलियों को लेकर बच्चों की अभिलाषा क्या थी ?
3. मछलियाँ लिए घर आने के बाद बच्चों ने क्या किया ?
4. मछली को छूते हुए संतू क्यों हिचक रहा था ?
5. मछली के बारे में दीदी ने क्या जानकारी दी थी ? बच्चों ने उसकी परख कैसे की ?
6. संतू क्यों उदास हो गया ?
7. घर में मछली कौन खाता था और वह कैसे बनायी जाती थी ?
8. दीदी कहाँ थी और क्या कर रही थी ?
9. अरे-अरे कहता हुआ भग्गू किसके पीछे भागा और क्यों ?
10. मछली और दीदी में क्या समानता दिखलाई पड़ी ? स्पष्ट करें।
11. पिताजी किससे नाराज थे और क्यों ?
12. सप्रसंग व्याख्या करें -
    (क) बरसते पानी में खड़े होकर झोले का मुँह आकाश की तरफ फैलाकर मैंने खोल दिया ताकि आकाश का पानी झोले के अंदर पड़ी मछलियों पर पड़े।
    (ख) अगर बाल्टी भरी होती तो मछली उछलकर नीचे आ जाती।
    (ग) और पास से देख। परछाई दिखती है ?
    (घ) नहानघर की नाली क्षणभर के लिए पूरी भर गई, फिर बिल्कुल खाली हो गयी।
13. संतू के विरोध का क्या अभिप्राय है ?
14. दीदी का चरित्र चित्रण करें।
15. कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट करें।
16. कहानी का सारांश प्रस्तुत करें।

पाठ के आस-पास

1. कक्षा 12 की पाठ्यपुस्तक 'दिगंत भाग-2' में शामिल विनोद कुमार शुक्ल की कविता पढ़ें और कविता पर मित्रों से चर्चा करें।
2. 'महाविद्यालय' संकलन स्कूल के पुस्तकालय से उपलब्ध कर पढ़ें तथा यह बताएँ कि उसमें और कौन-कौन सी कहानी आपको पसंद आयी और क्यों ?

भाषा की बात

1. **निम्नांकित विशेष्य पदों में उपयुक्त विशेषण या क्रियाविशेषण लगाएँ –**
   गली, मछली, उछली, कमीज, मूँछें, परछाईं, नहानघर, खँगाला
2. पाठ में प्रयुक्त विभिन्न क्रियारूपों को एकत्र कीजिए ।
3. **निम्नांकित वाक्यों के पद-विग्रह करें –**
   (क) मुर्दा सी मछली के पूरे शरीर में अच्छी तरह राख मली ।
   (ख) पाटे के पास मछलियों के गोल-गोल चमकीले पंख पड़े थे ।

शब्द निधि

टटोला	:	अनुमान किया, थाह लिया
फर्श	:	पक्की जमीन
उत्सुकता	:	कुतूहल, जानने की इच्छा
छोर	:	किनारा
पाटा	:	वह लकड़ी जिस पर रखकर मछली काटी गई
आहट	:	ध्वनि, आवाज, संकेत
पेटी	:	बक्सा
टावेल	:	तौलिया
टकटकी	:	अपलक देखना
अंगोछा	:	गमछा
सरपट	:	तेजी
लहरना	:	तड़पना
सिसकियाँ	:	रुदन की अस्पष्ट ध्वनि, धीमे-धीमे रोना
बाड़ा	:	अहाता
निचोड़ना	:	निथारना, गारना

यतींद्र मिश्र

यतींद्र मिश्र का जन्म सन् 1977 में अयोध्या, उत्तरप्रदेश में हुआ । उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से हिंदी भाषा और साहित्य में एम० ए० किया । वे साहित्य, संगीत, सिनेमा, नृत्य और चित्रकला के जिज्ञासु अध्येता हैं । वे रचनाकार के रूप में मूलतः एक कवि हैं । उनके अबतक तीन काव्य-संग्रह : 'यदा-कदा', 'अयोध्या तथा अन्य कविताएँ', और 'ड्योढ़ी पर आलाप' प्रकाशित हो चुके हैं । कलाओं में उनकी गहरी अभिरुचि है । इसका ही परिणाम है कि उन्होंने प्रख्यात शास्त्रीय गायिका गिरिजा देवी के जीवन और संगीत साधना पर एक पुस्तक 'गिरिजा' लिखी । भारतीय नृत्यकलाओं पर विमर्श की पुस्तक है 'देवप्रिया', जिसमें भरतनाट्यम और ओडिसी की प्रख्यात नृत्यांगना सोनल मान सिंह से यतींद्र मिश्र का संवाद संकलित है । यतींद्र मिश्र ने स्पिक मैके के लिए 'विरासत 2001' के कार्यक्रम के लिए रूपंकर कलाओं पर केंद्रित पत्रिका 'थाती' का संपादन किया है । संप्रति, वे अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'सहित' का संपादन कर रहे हैं । वे साहित्य और कलाओं के संवर्धन एवं अनुशीलन के लिए एक सांस्कृतिक न्यास 'विमला देवी फाउंडेशन' का संचालन 1999 ई० से कर रहे हैं ।

यतींद्र मिश्र ने रीतिकाल के अंतिम प्रतिनिधि कवि द्विजदेव की ग्रंथावली का सह-संपादन भी किया है । उन्होंने हिंदी के प्रसिद्ध कवि कुँवरनारायण पर केंद्रित दो पुस्तकों के अलावा हिंदी सिनेमा के जाने-माने गीतकार गुलजार की कविताओं का संपादन 'यार जुलाहे' नाम से किया है । यतींद्र मिश्र को अबतक भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद् युवा पुरस्कार, राजीव गाँधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, रजा पुरस्कार, हेमंत स्मृति कविता पुरस्कार, ऋतुराज सम्मान आदि कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं । उन्हें केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी, नयी दिल्ली और सराय, नई दिल्ली की फेलोशिप भी मिली है ।

'नौबतखाने में इबादत' प्रसिद्ध शहनाईवादक भारतरत्न उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ पर रोचक शैली में लिखा गया व्यक्तिचित्र है । इस पाठ में बिस्मिल्ला खाँ का जीवन - उनकी रुचियाँ, अंतर्मन की बुनावट, संगीत की साधना आदि गहरे जीवनानुराग और संवेदना के साथ प्रकट हुए हैं ।

नौबतखाने में इबादत

सन् 1916 से 1922 के आसपास की काशी । पंचगंगा घाट स्थित बालाजी मंदिर की ड्योढ़ी । ड्योढ़ी का नौबतखाना और नौबतखाना से निकलनेवाली मंगलध्वनि ।

कमरूद्दीन अभी सिर्फ छह साल का है और बड़ा भाई शम्सुद्दीन नौ साल का । कमरूद्दीन को पता नहीं है कि राग किस चिड़िया को कहते हैं । और ये लोग हैं मामूजान वगैरह जो बात-बात पर भीमपलासी और मुलतानी कहते रहते हैं । क्या वाजिब मतलब हो सकता है इन शब्दों का, इस लिहाज से अभी उम्र नहीं है कमरूद्दीन की, जान सके इन भारी शब्दों का वजन कितना होगा । गोया इतना जरूर है कि कमरूद्दीन व शम्सुद्दीन के मामाद्वय सादिक हुसैन तथा अलीबख्श देश के जाने-माने शहनाई वादक हैं । विभिन्न रियासतों के दरबार में बजाने जाते रहते हैं । रोजनामचे में बालाजी का मंदिर सबसे ऊपर आता है । हर दिन की शुरुआत वहीं ड्योढ़ी पर होती है । मंदिर के विग्रहों को पता नहीं कितनी समझ है, जो रोज बदल-बदलकर मुलतानी, कल्याण, ललित और कभी भैरव रागों को सुनते रहते हैं । ये खानदानी पेशा है अलीबख्श के घर का । उनके अब्बाजान भी यहीं ड्योढ़ी पर शहनाई बजाते रहते हैं ।

कमरूद्दीन का जन्म डुमराँव, बिहार के एक संगीत प्रेमी परिवार में 1916 ई० में हुआ । 5-6 वर्ष डुमराँव में बिताकर वह नाना के घर, ननिहाल काशी में आ गये । शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी थे । शहनाई बजाने के लिए रीड का प्रयोग होता है । रीड अंदर से पोली होती है जिसके सहारे शहनाई को फूँका जाता है । रीड, नरकट (एक प्रकार की घास) से बनाई जाती है जो डुमराँव के आसपास की नदियों के कछारों में पाई जाती है । फिर कमरूद्दीन ही अपने उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ साहब थे । इनके परदादा उस्ताद सलार हुसैन खाँ डुमराँव निवासी थे । बिस्मिल्ला खाँ उस्ताद पैगंबरबख्श खाँ और मिट्ठन के छोटे साहबजादे थे ।

बिस्मिल्ला खाँ की उम्र मात्र 14 साल । वही पुराना बालाजी का मंदिर जहाँ बिस्मिल्ला खाँ को नौबतखाने रियाज के लिए जाना पड़ता । मगर एक रास्ता है बालाजी मंदिर तक जाने

का। यह रास्ता रसूलनबाई और बतूलनबाई के यहाँ से होकर जाता है। इस रास्ते से कमरूद्दीन को जाना अच्छा लगता। इस रास्ते न जाने कितने तरह के बोल-बनाव कभी ठुमरी, कभी टप्पे, कभी दादरा के मार्फ़त ड्योढ़ी तक पहुँचते रहते। रसूलन और बतूलन जब गाती, तब कमरूद्दीन को खुशी मिलती। अपने ढेरों साक्षात्कारों में बिस्मिल्ला खाँ साहब ने स्वीकार किया है कि उन्हें अपने जीवन के आरंभिक दिनों में संगीत के प्रति आसक्ति इन्हीं गायिका बहिनों को सुनकर हुई। एक प्रकार से उनकी अबोध उम्र में अनुभव की स्लेट पर संगीत प्रेरणा की वर्णमाला रसूलनबाई और बतूलनबाई ने उकेरी।

वैदिक इतिहास में शहनाई का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसे संगीत शास्त्रांतर्गत 'सुषिर-वाद्यों' में गिना जाता है। अरब देश में फूँककर बजाए जाने वाले वाद्य जिसमें नाड़ी (नरकट या रीड) होती है, को 'नय' बोलते हैं। शहनाई को 'शाहेनय' अर्थात् 'सुषिर वाद्यों में शाह' की उपाधि दी गई है। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के तानसेन के द्वारा रची बंदिश, जो संगीत राग कल्पद्रुम से प्राप्त होती है, में शहनाई, मुरली, वंशी, शृंगी एवं मुरछंग आदि का वर्णन आया है।

अवधी पारंपरिक लोकगीतों एवं चैती में शहनाई का उल्लेख बार-बार मिलता है। मंगल का परिवेश प्रतिष्ठित करने वाला यह वाद्य इन जगहों पर मांगलिक विधि-विधानों के अवसर पर ही प्रयुक्त हुआ है। दक्षिण भारत के मंगल वाद्य 'नागस्वरम्' की तरह शहनाई, प्रभाती की मंगलध्वनि का संपूरक है।

शहनाई की इसी मंगलध्वनि के नायक बिस्मिल्ला खाँ साहब दशकों से सुर माँग रहे हैं। सच्चे सुर की नेमत। पाँचों वक्त वाली नमाज इसी सुर को पाने की प्रार्थना में खर्च हो जाती। लाखों सज्दे, इसी एक सच्चे सुर की इबादत में खुदा के आगे झुकते। वे नमाज के बाद सज्दे में गिड़गिड़ाते - 'मेरे मालिक एक सुर बख्श दे। सुर में वह तासीर पैदा कर कि आँखों से सच्चे मोती की तरह अनगढ़ आँसू निकल आएँ। उनको यकीन था, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा और अपनी झोली से सुर का फल निकालकर उनकी ओर उछालेगा, फिर कहेगा, ले जा कमरूद्दीन इसको खा ले और कर ले अपनी मुराद पूरी।

अपने ऊहापोहों से बचने के लिए हम स्वयं किसी शरण, किसी गुफा को खोजते हैं जहाँ अपनी दुश्चिंताओं, दुर्बलताओं को छोड़ सकें और वहाँ से फिर अपने लिए एक नया तिलिस्म गढ़ सकें। हिरन अपनी ही महक से परेशान पूरे जंगल में उस वरदान को खोजता है जिसकी गमक उसी में समाई है। कई दशक तक बिस्मिल्ला खाँ यही सोचते आए कि सातों सुरों को बरतने की तमीज उन्हें सलीके से अभी तक क्यों नहीं आई।

बिस्मिल्ला खाँ और शहनाई के साथ जिस मुस्लिम पर्व का नाम जुड़ा हुआ है, वह मुहर्रम है। मुहर्रम का महीना वह होता है जिसमें शिया मुसलमान हजरत इमाम हुसैन एवं उनके कुछ वंशजों के प्रति अजादारी (शोक मनाना) मनाते हैं। पूरे दस दिनों का शोक। वे बताते कि उनके खानदान का कोई व्यक्ति मुहर्रम के दिनों में न तो शहनाई बजाता, न ही किसी संगीत के

कार्यक्रम में शिरकत ही करते। आठवीं तारीख उनके लिए खास महत्त्व की होती थी। इस दिन खाँ साहब खड़े होकर शहनाई बजाते व दालमंडी में फातमान के करीब आठ किलोमीटर की दूरी तक पैदल रोते हुए, नौहा बजाते जाते। इस दिन कोई राग नहीं बजता। राग-रागिनियों की अदायगी का निषेध है इस दिन।

उनकी आँखें इमाम हुसैन और उनके परिवार के लोगों की शहादत में नम रहतीं। अजादारी होती। हजारों आँखें नम। हजार बरस की परंपरा पुनर्जीवित। मुहर्रम संपन्न होता। एक बड़े कलाकार का सहज मानवीय रूप ऐसे अवसर पर आसानी से दिख जाता था।

मुहर्रम के गमजदा माहौल से अलग, कभी-कभी सुकून के क्षणों में वे अपनी जवानी के दिनों को याद करते। वे अपने रियाज़ को कम, उन दिनों के अपने जुनून को अधिक याद करते। अपने अब्बाजान और उस्ताद को कम, पक्का महाल की कुलसुम हलवाइन की कचौड़ी वाली दुकान व गीताबाली और सुलोचना को ज्यादा याद करते। कैसे सुलोचना उनकी पसंदीदा हीरोइन रही थीं, बड़ी रहस्यमय मुस्कराहट के साथ गालों पर चमक आ जाती थी। खाँ साहब की अनुभवी आँखें और जल्दी ही खिस्स से हँस देने की ईश्वरीय कृपा बदस्तूर कायम रही।

इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद थीं। वे जब उनका जिक्र करते तब फिर उसी नैसर्गिक आनंद में आँखें चमक उठतीं। कमरुद्दीन तब सिर्फ चार साल के रहे होंगे। छुपकर नाना को शहनाई बजाते हुए सुनते थे, रियाज़ के बाद जब अपनी जगह से उठकर चले जाएँ तब जाकर ढेरों छोटी-बड़ी शहनाइयों की भीड़ से अपने नाना वाली शहनाई ढूँढ़ते और एक-एक शहनाई को फेंक कर खारिज करते जाते, सोचते 'लगता है मीठी वाली शहनाई दादा कहीं और रखते हैं।' जब मामू अलीबख्श खाँ (जो उस्ताद भी थे) शहनाई बजाते हुए सम पर आएँ, तब धड़ से एक पत्थर जमीन पर मारते थे। सम पर आने की तमीज उन्हें बचपन में ही आ गई थी, मगर बच्चे को यह नहीं मालूम था कि दाद वाह करके दी जाती है, सिर हिलाकर दी जाती है, पत्थर पटक कर नहीं। और बचपन के समय फिल्मों के बुखार के बारे में तो पूछना ही क्या? उस समय थर्ड क्लास के लिए छह पैसे का टिकट मिलता था। कमरुद्दीन दो पैसे मामू से, दो पैसे मौसी से और दो पैसे नानी से लेता था फिर घंटों लाइन में लगकर टिकट हासिल करते थे।

इधर सुलोचना की नई फ़िल्म सिनेमाहॉल में आई और उधर कमरुद्दीन अपनी कमाई लेकर चले फिल्म देखने जो बालाजी मंदिर पर रोज़ शहनाई बजाने से उन्हें मिलती थी। एक

अठन्नी मेहनताना। उस पर यह शौक जबरदस्त कि सुलोचना की कोई नई फिल्म न छूटे और कुलसुम की देशी घी वाली दुकान। वहाँ की संगीतमय कचौड़ी। संगीतमय कचौड़ी इस तरह क्योंकि कुलसुम जब कलकलाते घी में कचौड़ी डालती थी,उस समय छन्न से उठने वाली खाली आवाज में उन्हें सारे आरोह अवरोह दिख जाते थे। राम जाने, कितनों ने ऐसी कचौड़ी खाई होंगी। मगर इतना तय है कि अपने ख़ाँ साहब रियाज़ी और स्वादी दोनों थे और इस बात में कोई शक नहीं कि दादा की मीठी शहनाई उनके हाथ लग चुकी थी।

काशी में संगीत आयोजन की एक प्राचीन एवं अद्भुत परंपरा रही है। यह आयोजन पिछले कई दशकों से संकटमोचन मंदिर में होता आया है। यह मंदिर शहर के दक्षिण में लंका पर स्थित है व हनुमान जयंती के अवसर यहाँ पाँच दिनों तक शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायन-वादन की उत्कृष्ट सभा होती है। इसमें बिस्मिल्ला ख़ाँ अवश्य रहते थे। अपने मजहब के प्रति अत्यधिक समर्पित उस्ताद बिस्मिल्ला ख़ाँ की श्रद्धा काशी विश्वनाथ जी के प्रति भी अपार थी। वे जब भी काशी से बाहर रहते तब विश्वनाथ व बालाजी मंदिर की दिशा की ओर मुँह करके बैठते, थोड़ी देर ही सही, मगर उसी ओर शहनाई का प्याला घुमा दिया जाता और भीतर की आस्था रीड के माध्यम से बजती। ख़ाँ साहब की एक रीड 15 से 20 मिनट के अंदर गीली हो जाती थी तब वे दूसरी रीड का इस्तेमाल कर लिया करते थे।

अक्सर कहते - " क्या करें मियाँ, ई काशी छोड़कर कहाँ जाएँ, गंगा मइया यहाँ, बाबा विश्वनाथ यहाँ, बालाजी का मंदिर यहाँ, यहाँ हमारे खानदान की कई पुश्तों ने शहनाई बजाई है, हमारे नाना तो वहीं बालाजी मंदिर में बड़े प्रतिष्ठित शहनाईबाज रह चुके हैं। अब हम क्या करें, मरते दम तक न यह शहनाई छूटेगी न काशी। जिस जमीन ने हमें तालीम दी, जहाँ से अदब पाई, वो कहाँ और मिलेगी ? शहनाई और काशी से बढ़कर कोई जन्नत नहीं इस धरती पर हमारे लिए।"

काशी संस्कृति की पाठशाला है। शास्त्रों में आनंदकानन के नाम से प्रतिष्ठित। काशी में कलाधर हनुमान व नृत्य-विश्वनाथ हैं। काशी में बिस्मिल्ला ख़ाँ थे। काशी में हजारों सालों का इतिहास है जिसमें पंडित कंठे महाराज थे, विद्याधरी थे, बड़े रामदास जी थे, मौजद्दीन ख़ाँ थे व इन रसिकों से उपकृत होने वाला अपार जन समूह। यह एक अलग काशी है जिसकी अलग तहजीब है, अपनी बोली और अपने विशिष्ट लोग हैं। इनके अपने उत्सव हैं, अपना गम। अपना सेहरा-बन्ना और अपना नौहा। आप यहाँ संगीत को भक्ति से, भक्ति को किसी भी धर्म के कलाकार से, कजरी को चैती से, विश्वनाथ को विशालाक्षी से, बिस्मिल्ला ख़ाँ को गंगाद्वार से अलग करके नहीं देख सकते।

अक्सर समारोहों एवं उत्सवों में दुनिया कहती ये बिस्मिल्ला ख़ाँ हैं। बिस्मिल्ला ख़ाँ का मतलब-बिस्मिल्ला ख़ाँ की शहनाई। शहनाई का तात्पर्य-बिस्मिल्ला ख़ाँ का हाथ। हाथ से आशय इतना भर कि बिस्मिल्ला ख़ाँ की फूँक और शहनाई की जादुई आवाज का असर हमारे सिर चढ़कर

बोलने लगता। शहनाई में सरगम भरा है। खाँ साहब को ताल मालूम, राग मालूम। ऐसा नहीं कि बेताल जाएँगे। शहनाई में सात सुर लेकर निकल पड़े। शहनाई में परवरदिगार, गंगा मइया, उस्ताद की नसीहत लेकर उतर पड़े। दुनिया कहती-सुबहान अल्लाह, तिस पर बिस्मिल्ला खाँ कहते – अलहमदुलिल्लाह! छोटी-छोटी उपज से मिलकर बड़ा आकार बनता है। शहनाई का करतब शुरू होने लगता। बिस्मिल्ला खाँ का संसार सुरीला होना शुरू हुआ। फूँक में अजान की तासीर उतरती चली गई। देखते-देखते शहनाई डेढ़ सतक के साज से दो सतक का साज बन, साजों की कतार में सरताज हो गई। कमरूद्दीन की शहनाई गूँज उठी। उस फकीर की दुआ लगी जिसने कमरूद्दीन से कहा था – "बजा, बजा।"

किसी दिन एक शिष्या ने डरते-डरते खाँ साहब को टोका, "बाबा! आप यह क्या करते हैं इतनी प्रतिष्ठा है आपकी। अब तो आपको 'भारतरत्न' भी मिल चुका है, यह फटी तहमद न पहना करें। अच्छा नहीं लगता, जब भी कोई आता है आप इसी फटी तहमद में सबसे मिलते हैं।" खाँ साहब मुस्कराए। लाड़ से भरकर बोले, "धत्! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं। तुम लोगों की तरह बनाव सिंगार देखते रहते तो उमर ही बीत जाती, हो चुकती शहनाई। तब क्या खाक रियाज हो पाता। ठीक है बिटिया, आगे से नहीं पहनेंगे, मगर इतना बताए देते हैं कि मालिक से यही दुआ है, फटा सुर न बख्शें। लुंगिया का क्या है, आज फटी है तो कल सिल जाएगी।"

सन् 2000 की बात है। पक्का महाल (काशी विश्वनाथ से लगा हुआ इलाका) से मलाई बरफ बेचनेवाले जा चुके हैं। खाँ साहब को इसकी कमी खलती है। अब देशी घी में वह बात कहाँ और कहाँ वह कचौड़ी-जलेबी। खाँ साहब को बड़ी शिद्दत से कमी खलती है। अब संगतियों के लिए गायकों के मन में कोई आदर नहीं रहा। खाँ साहब अफसोस जताते हैं। अब घंटों रियाज को कौन पूछता है? हैरान हैं बिस्मिल्ला खाँ। कहाँ वह कजली, चैती और अदब का जमाना?

सचमुच हैरान करती है काशी। पक्का महाल से जैसे मलाई बरफ गया, संगीत, साहित्य और अदब की बहुत सारी परंपराएँ लुप्त हो गईं। एक सच्चे सुर साधक और सामाजिक की भाँति बिस्मिल्ला खाँ साहब को इन सबकी कमी खलती थी। काशी में जिस तरह बाबा विश्वनाथ और बिस्मिल्ला खाँ एक-दूसरे के पूरक रहे, उसी तरह मुहर्रम-ताजिया और होली-अबीर, गुलाल की गंगा-जमुनी संस्कृति भी एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। अभी जल्दी ही

बहुत कुछ इतिहास बन चुका है । अभी आगे बहुत कुछ इतिहास बन जाएगा । फिर भी कुछ बचा है जो सिर्फ काशी में है । काशी आज भी संगीत के स्वर पर जगती और उसी की थापों पर सोती है । काशी में मरण भी मंगल माना गया है । काशी आनंदकानन है । सबसे बड़ी बात है कि काशी के पास उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ जैसा लय और सुर की तमीज सिखाने वाला नायाब हीरा रहा है जो हमेशा से दो कौमों को एक होने व आपस में भाईचारे के साथ रहने की प्रेरणा देता रहा ।

भारतरत्न से लेकर इस देश के ढेरों विश्वविद्यालयों की मानद उपाधियों से अलंकृत व संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं पद्मविभूषण जैसे सम्मानों से नहीं, बल्कि अपनी अजेय संगीतयात्रा के लिए बिस्मिल्ला खाँ साहब भविष्य में हमेशा संगीत के नायक बने रहेंगे । नब्बे वर्ष की भरी-पूरी आयु में 21 अगस्त 2006 को संगीत रसिकों की हार्दिक सभा से हमेशा के लिए विदा हुए खाँ साहब की सबसे बड़ी देन यही है कि सारी उम्र उन्होंने संगीत को संपूर्णता व एकाधिकार से सीखने की जिजीविषा अपने भीतर जिंदा रखी ।

◆◆◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. डुमराँव की महत्ता किस कारण से है ?
2. सुषिर वाद्य किन्हें कहते हैं । 'शहनाई' शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई है ?
3. बिस्मिल्ला खाँ सजदे में किस चीज के लिए गिड़गिड़ाते थे ? इससे उनके व्यक्तित्व का कौन-सा पक्ष उद्घाटित होता है ?
4. मुहर्रम पर्व से बिस्मिल्ला खाँ के जुड़ाव का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
5. 'संगीतमय कचौड़ी' का आप क्या अर्थ समझते हैं ?
6. बिस्मिल्ला खाँ जब काशी से बाहर प्रदर्शन करते थे तो क्या करते थे ? इससे हमें क्या सीख मिलती है ?
7. 'बिस्मिल्ला खाँ का मतलब – बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई ।' एक कलाकार के रूप में बिस्मिल्ला खाँ का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
8. आशय स्पष्ट करें –

   (क) फटा सुर न बख्शें । लुंगिया का क्या है, आज फटी है, तो कल सिल जाएगी ।

   (ख) काशी संस्कृति की पाठशाला है ।
9. बिस्मिल्ला खाँ के बचपन का वर्णन पाठ के आधार पर दें ।

पाठ के आस-पास

1. बिस्मिल्ला खाँ मुर्हरम की आठवीं तारीख को केवल नौहा बजाते थे, कोई राग-रागिनी नहीं । क्यों, मालूम करें ।
2. इस पाठ में किन फिल्म कलाकारों के नाम आए हैं । आप उनकी फिल्मों के नाम मालूम करें । उन कलाकारों की तस्वीरें भी इकट्ठी करें ।
3. बिस्मिल्ला खाँ को फिल्मों का शौक था, आप उनके इस शौक को किस तरह देखते हैं और क्यों ?

भाषा की बात

1. रचना के आधार पर निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ –

   (क) काशी संस्कृति की पाठशाला है ।

   (ख) शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं ।

   (ग) एक बड़े कलाकार का सहज मानवीय रूप ऐसे अवसरों पर आसानी से दिख जाता है ।

   (घ) उनको यकीन है, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा ।

(ङ) धत् ! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं ।

2. **निम्नलिखित वाक्यों से विशेषण छाँटिए -**

(क) इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद हैं ।

(ख) अब तो आपको भारतरत्न भी मिल चुका है, यह फटी तहमद न पहना करें ।

(ग) शहनाई और काशी से बढ़कर कोई जन्नत नहीं इस धरती पर हमारे लिए ।

(घ) कैसे सुलोचना उनकी पसंदीदा हीरोइन रही थीं, बड़ी रहस्यमय मुस्कराहट के साथ गालों पर चमक आ जाती है ।

शब्द निधि :

ड्योढ़ी : दहलीज

नौबतखाना : प्रवेश द्वार के ऊपर मंगल ध्वनि बजाने का स्थान

रियाज : अभ्यास

मार्फत : द्वारा

शृंगी : सींग का बना वाद्ययंत्र

मुरछंग : एक प्रकार का लोक वाद्ययंत्र

नेमत : ईश्वर की देन, वरदान, कृपा

सज़दा : माथा टेकना

इबादत : उपासना

तासीर : गुण, प्रभाव, असर

श्रुति : शब्द-ध्वनि

ऊहापोह : उलझन, अनिश्चितता

तिलिस्म : जादू

गमक : खुशबू, सुगंध

अजादारी : मातम करना, दुख मनाना

बदस्तूर : कायदे से, तरीके से

नैसर्गिक : स्वाभाविक, प्राकृतिक

दाद : शाबाशी, प्रशंसा, वाहवाही

तालीम : शिक्षा

अदब : कायदा, साहित्य

अलहमदुलिल्लाह : तमाम तारीफ ईश्वर के लिए

जिजीविषा : जीने की इच्छा

शिरकत : शामिल होना

वाजिब : सही, उपयुक्त

मतलब : अर्थ

लिहाज : शिष्टाचार, छोटे-बड़े के प्रति उचित भाव

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL PATNA

गोया	:	जैसे कि, मानो कि
रोजनामचा	:	दैनंदिन, दिनचर्या
विग्रह	:	मूर्ति
कछार	:	नदी का किनारा
उकेरी	:	चित्रित करना, उभारना
संपूरक	:	पूरा करने वाला, पूर्ण करने वाला
मुराद	:	आकांक्षा, अभिलाषा
दुश्चिंता	:	बुरी चिंता
बरतना	:	बर्ताव करना, व्यवहार करना
सलीका	:	शिष्ट तरीका
गमजदा	:	गम में डूबा
सुकून	:	शांति, आराम
जुनून	:	उन्माद, सनक
खारिज	:	अस्वीकार करना
आरोह	:	चढ़ाव
अवरोह	:	उतार
आनंदकानन	:	ऐसा बागीचा जिसमें आठों पहर आनन्द रहे
उपकृत	:	उपकार करना, कृतार्थ करना
तहजीब	:	संस्कृति, सभ्यता
सेहरा-बन्ना	:	सेहरा बाँधना, श्रेय देना
नौहा	:	शहनाई
सरगम	:	संगीत के सात स्वर (सा रे ग म प ध नी)
नसीहत	:	शिक्षा, उपदेश, सीख
तहमद	:	लुंगी, अधोवस्त्र
शिद्दत	:	असरदार तरीके से, जोर के साथ
सामाजिक	:	सुसंस्कृत
नायाब	:	अद्भुत, अनुपम
जिजीविषा	:	जीने की लालसा

यह भी जानें

सम – ताल का एक अंग, संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरंभ होता है।

श्रुति – एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय का अत्यंत सूक्ष्म स्वरांश।

वाद्ययंत्र – हमारे देश में वाद्य यंत्रों की मुख्य चार श्रेणियाँ मानी जाती हैं -
तत-वितत - तार वाले वाद्य – वीणा, सितार, सारंगी, सरोद

सुषिर - फूँक कर बजाए जाने वाले वाद्य - बाँसुरी, शहनाई, नागस्वरम्, बीन

घनवाद्य - आघात से बजाए जाने वाले धातु वाद्य - झाँझ, मंजीरा, घुँघरू

अवनद्ध - चमड़े से मढ़े वाद्य - तबला, ढोलक, मृदंग आदि ।

चैती - एक तरह का चलता गाना ।

चैती

चढ़ल चइत चित लागे ना रामा
बाबा के भवनवा
बीर बमनवा सगुन बिचारो
कब होइहैं पिया से मिलनवा हो रामा
चढ़ल चइत चित लागे ना रामा

ठुमरी - एक प्रकार का गीत जो केवल एक स्थायी और एक ही अंतरे में समाप्त होता है ।

ठुमरी

बाजुबंद खुल-खुल जाए
जादू की पुड़िया भर-भर मारी
हे ! बाजुबंद खुल-खुल जाए

टप्पा - यह भी एक प्रकार का चलता गाना ही कहा जाता है । ध्रुपद एवं ख्याल की अपेक्षा जो गायन संक्षिप्त है, वही टप्पा है ।

टप्पा

बागाँ विच आया करो
बागाँ विच आया करो
मक्खियाँ तों डर लगदा
गुड़ जरा कम खाया करो ।

दादरा - एक प्रकार का चलता गाना । दो अर्द्धमात्राओं के ताल को भी दादरा कहा जाता है ।

दादरा

तड़प-तड़प जिया जाए
साँवरिया बिना
गोकुल छाड़े मथुरा में छाए
किन संग प्रीत लगाए
तड़प-तड़प जिया जाए

❑❑❑

महात्मा गाँधी

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई० में पोरबंदर, गुजरात में हुआ था । उनके पिता का नाम करमचंद गाँधी और माता का नाम पुतलीबाई था । उनकी प्रारंभिक शिक्षा पोरबंदर और उसके आस-पास हुई । 4 दिसंबर 1888 ई० में वे वकालत की पढ़ाई के लिए यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन यूनिवर्सिटी, लंदन गए । 1883 ई०में कम उम्र में ही उनका विवाह कस्तूरबा से हुआ जो स्वाधीनता संग्राम में उनके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलीं । गाँधीजी के जीवन में दक्षिण अफ्रीका (1893-1914 ई०) के प्रवास का ऐतिहासिक महत्त्व है । वहीं उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ अहिंसा का पहला प्रयोग किया ।

1915 ई० में गाँधीजी भारत लौट आए और स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े । आजादी की लड़ाई में उन्होंने सत्य के प्रयोग किए । अहिंसा और सत्याग्रह उनका सबसे बड़ा हथियार था । उन्होंने स्वराज की माँग की, अछूतोद्धार का काम किया, सर्वोदय का कार्यक्रम चलाया, स्वदेशी का नारा दिया, समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जाति-धर्म के विभेदक भाव को मिटाने की कोशिश की और अंततः अंग्रेजों की गुलामी से भारत को आजादी दिलाई ।

गाँधीजी को रवींद्रनाथठाकुर ने 'महात्मा' कहा । उन्हें 'बापू', 'राष्ट्रपिता' आदि कहकर कृतज्ञ राष्ट्र याद करता है । गाँधीजी ने 'हिंद स्वराज', 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' आदि पुस्तकें लिखीं । उन्होंने 'हरिजन', 'यंग इंडिया' आदि पत्रिकाएँ भी संपादित कीं । उनका पूरा जीवन राष्ट्र के प्रति समर्पित था । उन्होंने शिक्षा, संस्कृति, राजनीति तथा सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर खूब लिखा और उनके प्रयोग के द्वारा भारतवर्ष को फिर से एक उन्नत एवं गौरवशाली राष्ट्र बनाने की कोशिश की । 30 जनवरी 1948 ई० में नई दिल्ली में एक सिरफिरे ने उनकी हत्या कर दी । गाँधीजी की स्मृति में पूरा राष्ट्र 2 अक्टूबर को उनकी जयंती मनाता है । अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनके जन्म दिवस को 'अहिंसा दिवस' के रूप में मनाया जाता है ।

शिक्षा और संस्कृति जैसे विषय पर यहाँ 'हरिजन', 'यंग इंडिया' जैसे ऐतिहासिक पत्रों के अग्रलेखों से संकलित-संपादित राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विचार प्रस्तुत हैं । इस पाठ में उनके क्रांतिकारी शिक्षा दर्शन के अनुरूप वास्तविक जीवन में उपयोगी, व्यावहारिक दृष्टिकोण और विचार हैं जिनके बल पर आत्मा, बुद्धि, मानस एवं शरीर के संतुलित परिष्कार के साथ मनुष्य के नैतिक विकास के लिए जरूरी प्रेरणाएँ हैं । गाँधीजी की शिक्षा और संस्कृति की परिकल्पना निरी सैद्धांतिक नहीं है, वह जटिल और पुस्तकीय भी नहीं है, बल्कि हमारे साधारण दैनंदिन जीवन-व्यवहार से गहरे अर्थों में जुड़ी हुई है ।

शिक्षा और संस्कृति

अहिंसक प्रतिरोध सबसे उदात्त और बढ़िया शिक्षा है । वह बच्चों को मिलनेवाली साधारण अक्षर-ज्ञान की शिक्षा के बाद नहीं, पहले होनी चाहिए । इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि बच्चे को, वह वर्णमाला लिखे और सांसारिक ज्ञान प्राप्त करे उसके पहले यह जानना चाहिए कि आत्मा क्या है, सत्य क्या है, प्रेम क्या है और आत्मा में क्या-क्या शक्तियाँ छुपी हुई हैं । शिक्षा का जरूरी अंग यह होना चाहिए कि बालक जीवन-संग्राम में प्रेम से घृणा को, सत्य से असत्य को और कष्ट-सहन से हिंसा को आसानी के साथ जीतना सीखें । इस सत्य का बल अनुभव करने के कारण ही मैंने सत्याग्रह-संग्राम के उत्तरार्ध में पहले टॉलस्टाय फार्म में और बाद में फिनिक्स आश्रम में बच्चों को इसी ढंग की तालीम देने की भरसक कोशिश की थी ।

मेरी राय में बुद्धि की सच्ची शिक्षा शरीर की स्थूल इन्द्रियों अर्थात हाथ, पैर, आँख, कान, नाक वगैरह के ठीक-ठीक उपयोग और तालीम के द्वारा ही हो सकती है । दूसरे शब्दों में, बच्चे द्वारा इन्द्रियों का बुद्धिपूर्वक उपयोग उसकी बुद्धि के विकास का जल्द-से-जल्द और उत्तम तरीका है । परन्तु शरीर और मस्तिष्क के विकास के साथ आत्मा की जागृति भी उतनी ही नहीं होगी, तो केवल बुद्धि का विकास घटिया और एकांगी वस्तु ही साबित होगा । आध्यात्मिक शिक्षा से मेरा मतलब हृदय की शिक्षा है । इसलिए मस्तिष्क का ठीक-ठीक और सर्वांगीण विकास तभी हो सकता है, जब साथ-साथ बच्चे की शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों की भी शिक्षा होती रहे । ये सब बातें अविभाज्य हैं । इसलिए इस सिद्धांत के अनुसार यह मान लेना कुतर्क होगा कि उनका विकास अलग-अलग या एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में किया जा सकता है ।

शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बच्चे और मनुष्य के शरीर, बुद्धि और आत्मा के सभी उत्तम गुणों को प्रगट किया जाए । पढ़ना-लिखना शिक्षा का अन्त तो है ही नहीं, वह आदि भी नहीं है । वह पुरुष और स्त्री को शिक्षा देने के साधनों में केवल एक साधन है । साक्षरता स्वयं कोई शिक्षा नहीं है । इसलिए तो मैं बच्चे की शिक्षा का प्रारंभ इस तरह करूँगा कि उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाई जाए और जिस क्षण से वह अपनी तालीम शुरू करे उसी क्षण उसे उत्पादन का काम करने योग्य बना दिया जाए ।

मेरे मतानुसार इस प्रकार की शिक्षा पद्धति में मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास संभव है । इतनी ही बात है कि आजकल की तरह प्रत्येक दस्तकारी केवल यांत्रिक ढंग से न सिखाकर वैज्ञानिक ढंग से सिखानी पड़ेगी । अर्थात बच्चे को प्रत्येक प्रक्रिया का कारण जानना चाहिए । मैं चाहता हूँ कि सारी शिक्षा किसी दस्तकारी या उद्योगों के द्वारा दी जाए ।

आपको यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रारंभिक शिक्षा में सफाई, तन्दुरुस्ती, भोजनशास्त्र, अपना काम आप करने और घर पर माता-पिता को मदद देने वगैरह के मूल सिद्धान्त शामिल हों ।

मौजूदा पीढ़ी के लड़कों को स्वच्छता और स्वावलंबन का कोई ज्ञान नहीं होता और वे शरीर से कमजोर होते हैं । इसलिए मैं संगीतमय कवायद के जरिए उनको अनिवार्य शारीरिक तालीम दिलवाऊँगा ।

इस प्रकार कताई और धुनाई जैसे ग्रामोद्योगों द्वारा प्राथमिक शिक्षा देने की मेरी योजना में कल्पना यह है कि यह एक ऐसी शान्त सामाजिक क्रान्ति की अग्रदूत बने, जिसमें अत्यंत दूरगामी परिणाम भरे हुए हैं । इससे नगर और ग्राम के संबंधों का एक स्वास्थ्यप्रद और नैतिक आधार प्राप्त होगा और समाज की मौजूदा आरक्षित अवस्था और वर्गों के परस्पर विषाक्त संबंधों की कुछ बड़ी से बड़ी बुराइयों को दूर करने में बहुत सहायता मिलेगी । इससे हमारे देहातों का दिन-दिन बढ़नेवाला ह्रास रुक जाएगा और एक दिन ऐसी अधिक न्यायपूर्ण व्यवस्था की बुनियाद पड़ेगी जिसमें गरीब-अमीर का अप्राकृतिक भेद न हो और हर एक के लिए गुजर के लायक कमाई और स्वतंत्रता के अधिकार का आश्वासन हो । और यह सब किसी भयंकर और रक्तरंजित वर्गयुद्ध अथवा बहुत भारी पूँजी के व्यय के बिना भी हो जाएगा । भारत जैसे विशाल देश का यंत्रीकरण किया गया तो इन दोनों बातों में से एक तो जरूर होगी । मेरी योजना में विदेशों से मँगाई हुई मशीनरी या वैज्ञानिक और यांत्रिक दक्षता पर भी लाचार होकर निर्भर करने की जरूरत नहीं पड़ेगी । आखिरी बात यह है कि बड़े-बड़े विशेषज्ञों की बुद्धि की जरूरत न होने के कारण एक तरह से जनसाधारण के भाग्य का निपटारा स्वयं उन्हीं के हाथ में रहेगा ।

जब भारत को स्वराज्य मिल जाएगा तब शिक्षा का क्या ध्येय होगा ? चरित्र-निर्माण । मैं साहस, बल, सदाचार और बड़े लक्ष्य के लिए काम करने में आत्मोत्सर्ग की शक्ति का विकास कराने की कोशिश करूँगा । यह साक्षरता से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है; किताबी ज्ञान तो उस बड़े उद्देश्य का एक साधनमात्र है ।

मेरा ख्याल है कि अगर व्यक्ति का चरित्र-निर्माण करने में हम सफल हो जाएँगे तो समाज अपना काम आप सँभाल लेगा । इस प्रकार जिन व्यक्तियों का विकास हो जाएगा, उनके हाथों में समाज के संगठन का काम मैं खुशी से सौंप दूँगा ।

मैं चाहता हूँ कि उस भाषा (अंग्रेजी) में और इसी तरह संसार की अन्य भाषाओं में जो ज्ञान-भंडार भरा पड़ा है, उसे राष्ट्र अपनी ही देशी भाषाओं के द्वारा प्राप्त करे । मुझे रवीन्द्रनाथ की अपूर्व रचनाओं की खूबियाँ जानने के लिए बाँग्ला सीखने की जरूरत नहीं । वे मुझे अच्छे अनुवादों से मिल जाती हैं । गुजराती लड़कों और लड़कियों को टॉल्सटाय की छोटी-छोटी कहानियों से लाभ उठाने के लिए रूसी भाषा सीखने की आवश्यकता नहीं । वे तो उन्हें अच्छे अनुवादों के जरिये सीख लेते हैं । अंग्रेजों को यह गर्व है कि संसार में जो उत्तम साहित्य उत्पन्न होता है, वह प्रकाशित होने के एक सप्ताह के भीतर सीधी-सादी अंग्रेजी में उस राष्ट्र के हाथों में आ जाता है । शेक्सपीयर और मिल्टन ने जो कुछ सोचा या लिखा है, उसके उत्तम भाग को प्राप्त करने के लिए मुझे अंग्रेजी सीखने की जरूरत क्यों हो ?

यह अच्छी मितव्ययिता होगी यदि हम विद्यार्थियों का एक अलग वर्ग ऐसा रख दें, जिसका काम यह हो कि संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में से सीखने की उत्तम बातें वह जान ले और

उनके अनुवाद देशी भाषाओं में करके देता रहे ।

यह बात मेरे विचार में भी नहीं आ सकती कि हम कूपमंडूक बन जायें या अपने चारों ओर दीवारें खड़ी कर लें । मगर मेरा नम्रतापूर्वक यह कथन जरूर है कि दूसरी संस्कृतियों की समझ और कद्र स्वयं अपनी संस्कृति की कद्र होने और उसे हजम कर लेने के बाद होनी चाहिए, पहले हरगिज नहीं । मेरा दृढ़ मत है कि कोई संस्कृति इतने रत्न-भण्डार से भरी हुई नहीं है जितनी हमारी अपनी संस्कृति है । हमने उसे जाना नहीं है । हमें तो उसके अध्ययन को तुच्छ मानना और उसका मूल्य कम करना सिखाया गया है । हमने उसके अनुसार जीवन बिताना छोड़ दिया है । उसका ज्ञान हो, मगर उस पर अमल न किया जाये तो वह मसाले में रखी हुई लाश जैसी है, जो शायद दिखने में सुन्दर हो, परन्तु उससे कोई प्रेरणा या पवित्रता प्राप्त नहीं होती । मेरा धर्म जहाँ यह आग्रह रखता है कि स्वयं अपनी संस्कृति को हृदयांकित करके उसके अनुसार आचरण किया जाए -- क्योंकि वैसा न किया जाए तो उसका परिणाम सामाजिक आत्महत्या होगा -- वहाँ वह दूसरी संस्कृतियों को तुच्छ समझने या उनकी उपेक्षा करने का निषेध भी करता है ।

कोई संस्कृति जिन्दा नहीं रह सकती, अगर वह दूसरों का बहिष्कार करने की कोशिश करती है । इस समय भारत में शुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज मौजूद नहीं है । आर्य लोग भारत के ही रहनेवाले थे या जबरन यहाँ आ घुसे थे, इसमें मुझे बहुत दिलचस्पी नहीं है । मुझे जिस बात में दिलचस्पी है वह यह है कि मेरे पूर्वज एक-दूसरे के साथ बड़ी आजादी के साथ मिल गये और मौजूदा पीढ़ीवाले हम लोग उस मिलावट की ही उपज हैं ।

मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों ओर दीवारें खड़ी कर दी जायें और मेरी खिड़कियाँ बन्द कर दी जायें । मैं चाहता हूँ कि सब देशों की संस्कृतियों की हवा मेरे घर के चारों ओर अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता के साथ बहती रहे । मगर मैं उनमें से किसी के झोंके में उड़ नहीं जाऊँगा । मैं चाहूँगा कि साहित्य में रुचि रखनेवाले हमारे युवा स्त्री-पुरुष जितना चाहे अंग्रेजी और संसार की दूसरी भाषाएँ सीखें और फिर उनसे यह आशा रखूँगा कि वे अपनी विद्वत्ता का लाभ भारत और संसार को उसी तरह दें जैसे बोस, राय या स्वयं कविवर दे रहे हैं । लेकिन मैं यह नहीं चाहूँगा कि एक भी भारतवासी अपनी मातृभाषा को भूल जाए, उसकी उपेक्षा करे, उस पर शर्मिन्दा हो या यह अनुभव करे कि वह अपनी खुद की देशी भाषा में विचार नहीं कर सकता या अपने उत्तम विचार प्रकट नहीं कर सकता । मेरा धर्म कैदखाने का धर्म नहीं है ।

भारतीय संस्कृति उन भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के सामंजस्य की प्रतीक है जिनके हिन्दुस्तान में पैर जम गए हैं, जिनका भारतीय जीवन पर प्रभाव पड़ चुका है और जो स्वयं भी भारतीय जीवन से प्रभावित हुई हैं । यह सामंजस्य कुदरती तौर पर स्वदेशी ढंग का होगा, जिसमें प्रत्येक संस्कृति के लिए अपना उचित स्थान सुरक्षित होगा । वह अमरीकी ढंग का सामंजस्य नहीं होगा, जिसमें एक प्रमुख संस्कृति बाकी संस्कृतियों को हजम कर लेती है और जिसका लक्ष्य मेल की तरफ नहीं है, बल्कि कृत्रिम और जबरदस्ती की एकता की ओर है ।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. गाँधीजी बढ़िया शिक्षा किसे कहते हैं ?
2. इंद्रियों का बुद्धिपूर्वक उपयोग सीखना क्यों जरूरी है ?
3. शिक्षा का अभिप्राय गाँधीजी क्या मानते हैं ?
4. मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास कैसे संभव है ?
5. गाँधीजी कताई और धुनाई जैसे ग्रामोद्योगों द्वारा सामाजिक क्रांति कैसे संभव मानते थे ?
6. शिक्षा का ध्येय गाँधीजी क्या मानते थे और क्यों ?
7. गाँधीजी देशी भाषाओं में बड़े पैमाने पर अनुवाद कार्य क्यों आवश्यक मानते थे ?
8. दूसरी संस्कृति से पहले अपनी संस्कृति की गहरी समझ क्यों जरूरी है ?
9. अपनी संस्कृति और मातृभाषा की बुनियाद पर दूसरी संस्कृतियों और भाषाओं से सम्पर्क क्यों बनाया जाना चाहिए ? गाँधीजी की राय स्पष्ट कीजिए ।
10. गाँधीजी किस तरह के सामंजस्य को भारत के लिए बेहतर मानते हैं और क्यों ?
11. **आशय स्पष्ट करें -**

    (क) मैं चाहता हूँ कि सारी शिक्षा किसी दस्तकारी या उद्योगों के द्वारा दी जाए ।

    (ख) इस समय भारत में शुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज मौजूद नहीं है ।

    (ग) मेरा धर्म कैदखाने का धर्म नहीं है ।

पाठ के आस-पास

1. 'गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा' विषय पर गाँधी जयंती के अवसर पर संगोष्ठी आयोजित करें ।
2. दस्तकारी के रूप में आपको क्या-क्या करने आता है ? शिक्षा में दस्तकारी और उद्योग के महत्त्व पर एक लेख लिखें और कक्षा में उसका पाठ करें ।
3. भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गाँधीजी के योगदान विषय पर एक संक्षिप्त आलेख तैयार करें और कक्षा में उस पर विमर्श करें ।
4. 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' और 'हिंदस्वराज' नामक पुस्तकें उपलब्ध कर पढ़ें और अपने मित्रों से इन पुस्तकों पर चर्चा करें ।
5. आपके आस-पास परिचित लोगों में कौन ऐसा व्यक्ति है जिसमें आप गाँधीजी की झलक पाते हैं और कैसे ?
6. 'बिहार में गाँधीजी' इस विषय पर एक आलेख तैयार करें और विद्यालय की गोष्ठी में इसका पाठ करें ।

1. **निम्नलिखित के विग्रह करते हुए समास के प्रकार बताएँ –**

   बुद्धिपूर्वक, हृदयांकित, सर्वांगीण, अविभाज्य, भोजनशास्त्र, उत्तरार्ध, रक्तरंजित, कूपमंडूक, अग्रदूत, एकांगी

2. **निम्नलिखित के पर्यायवाची बताएँ –**

   शारीरिक, प्रगट, दस्तकारी, मौजूदा, कोशिश, परिणाम, तालीम, पूर्वज

3. **निम्नलिखित के संधि-विच्छेद करें –**

   साक्षर, एकांगी, उत्तरार्ध, स्वावलंबन, संस्कृति, बहिष्कार, प्रत्येक, अध्यात्म

शब्द निधि

प्रतिरोध : विरोध, संघर्ष
उदात्त : उन्नत
उत्तरार्ध : बाद का, परवर्ती आधा भाग
स्थूल : मोटा
जागृति : जागरण
एकांगी : एकपक्षीय
सर्वांगीण : सम्पूर्ण, समग्र
अविभाज्य : अविभक्त, जिसे अलग-अलग न बाँटा जा सके
दस्तकारी : हस्तकौशल, हस्तशिल्प, हाथ की कारीगरी
यांत्रिक : मशीनी, यंत्र पर आधारित
कवायद : ड्रील, भागदौड़
अग्रदूत : आगे-आगे चलने वाला
दूरगामी : दूर तक जाने वाला
गुजर : निर्वाह, पालन
रक्तरंजित : खून से सना हुआ
दक्षता : कौशल
आत्मोत्सर्ग : खुद को न्योछावर करना, आत्म-त्याग
कूपमंडूक : कुएँ का मेढक, संकीर्ण
हजम : पचना
हरगिज : किसी भी हाल में
अमल : व्यवहार
हृदयांकित : हृदय में अंकित

❑❑❑